Con. 3. VII.16.48
350

अंक 7
संख्या 16

मंगलवार
30 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर.. 999

2. विधान का मसौदा-(*जारी*) 999-1082
[नया अनुच्छेद 11-बी तथा अनुच्छेद 10 और 12 पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

मंगलवार, 30 नवम्बर सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः साढ़े नौ बजे उपाध्यक्ष (डा. एच.सी. मुकर्जी): की अध्यक्षता में समवेत हुई।

प्रतिज्ञा ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्य ने प्रतिज्ञा ग्रहण की तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये।

माननीय श्री कृष्ण बल्लभ सहाय (बिहार : जनरल)

विधान का मसौदा–(*जारी*)
नवीन अनुच्छेद 11-बी

उपाध्यक्ष (डा. एच.सी. मुकर्जी): अब हम संशोधन नं. 382 पुर पुनः विचार प्रारंभ करते हैं। श्री अमिय कुमार घोष अब इस पर अपना मत व्यक्त करेंगे।

श्री अमिय कुमार घोष (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, जो मसला हमारे सामने पेश है उस पर मैं कोई लम्बी वक्तृता नहीं देना चाहता और न उस सिद्धान्त का ही विरोध करना चाहता हूं जो मेरे मित्र श्री लारी के संशोधन में सन्निहित है जिसे कि कल उन्होंने यहां पेश किया है। किन्तु इसे विधान में रखने का मैं अवश्य विरोध करता हूं, श्रीमान्। विधान में ऐसे खंड को स्थान देकर हम सदा के लिए राज्य के हाथ पांव बांध देंगे और आवश्यकता होने पर भी वह ऐसा दंड नहीं दे सकेगा।

यह सच है, श्रीमान्, कि यह दंड बड़ा ही अमानुषिक है, यह भी सच है कि न्यायाधीश इस सम्बन्ध में गलती कर सकते हैं जिससे हो सकता है कि निर्दोष व्यक्ति भी फांसी पर लटका दिये जायें। पर साथ ही हमें यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि समाज में केवल अच्छे ही लोग नहीं है। उसमें बुरे लोग भी हैं और इस प्रयोजन के लिए कि ये दुष्ट, समाज के अधिकारों को कुचलें नहीं, समाज को त्रास न दें, राज्य के लिये यह आवश्यक हो जा सकता है समाज को त्रस्त करने वाले ऐसे दुष्टों को ऐसा दंड दे।

मेरा यह ख्याल जरूर है कि जब लोगों में चेतना आ जाये, जब समाज विकसित हो जाये तब राज्य ऐसे दंडों के सम्बन्ध में अपनी नीति पर पुनर्विचार करे। किन्तु

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री अमिय कुमार घोष]

विधान में इन बातों का समावेश न होना चाहिए। उसके लिए तो हमें भारतीय दंड विधि-संहिता में सुधार करना होगा जिसमें भिन्न-भिन्न अपराधों के सम्बन्ध में ऐसे दंडों की व्यवस्था दी गई है। अभी हम एक परिवर्तन के काल से गुजर रहे हैं। हमारे सामने अनेक गम्भीर समस्यायें हैं हमारे सामने रोज भिन्न-भिन्न प्रकार की स्थितियां उत्पन्न होती हैं इसलिए कभी-कभी राज्य के लिए यह आवश्यक हो जा सकता है कि ऐसे अपराधों के लिए, जिनसे कि राज्य और समाज खतरे में पड़ जाये, उसे गम्भीर दंड देने पड़े। इसलिए सैद्धांतिक दृष्टि से तो मैं अवश्य इस बात से सहमत हूं, श्रीमान्, कि मृत्यु-दंड उठा दिया जाना चाहिये, पर विधान में इस आशय की व्यवस्था रखना और इस तरह सदा के लिये राज्य को बांध देना ठीक नहीं है। इसके लिए हमें भारतीय दंड विधि-संहिता में संशोधन करना चाहिए या उन कानूनों में सुधार करना चाहिए, जिनमें ऐसे दंड की व्यवस्था हैं जैसा कि मैं बता चुका हूं, हो सकता है कि राज्य के लिए परिस्थितिवश ऐसा दंड लगाना आवश्यक हो जाये। पर अगर आप विधान में इस तरह का खंड रख देते हैं तो विधान में संशोधन किये बिना राज्य ऐसा दंड दे ही नहीं सकता और विधान में संशोधन करना जरा कठिन काम है।

ऐसी हालतों में श्री लारी द्वारा पेश किये गये संशोधन का मैं विरोध करता हूं।

***श्री के. हनुमन्थय्या** (मैसूर): उपाध्यक्ष महोदय, श्री लारी ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसे उन्होंने दयाभाव के आधार पर तथा प्रगतिशील विचारों से प्रभावित होकर उपस्थित किया है। मृत्यु-दंड को उठा देने का प्रश्न विवादास्पद है और मेरा यहां श्री लारी से मतभेद है। उस समस्या पर हमें दो दृष्टियों से विचार करना होगा। एक तो अपराधी के दृष्टिकोण से इस पर हमें विचार करना होगा और दूसरे राज्य के दृष्टिकोण से मैं ऐसा समझता था कि अपराधी मृत्यु-दंड के बजाय आजीवन कारावास को ही पसन्द करेगा पर अभी कुछ दिन पूर्व मुझे बर्नार्ड शा का एक नाटक पढ़ने का संयोग मिला। नाटक बहुत ही अच्छा था जिसमें फ्रांस की एक प्रसिद्ध वीरांगना का चरित्र-चित्रण किया गया था। वह वीरांगना आजीवन कारावास के बजाय यह चाहती थी कि अग्नि की आहुति देकर उसका

शरीरांत किया जाये। लेखक ने उसके इस विचार का बड़ी खूबी से चित्रण किया है और इस नाटक के पढ़ लेने पर मुझे अपनी यह धारणा बदल देनी पड़ी कि अपराधी मृत्यु के बजाय यही पसंद करेगा कि उसे आजीवन कारावास की शून्य चहारदीवारी में एकाकी रहने दिया जाये, जहां उसे समाज-संपर्क की कोई गुंजाइश न हो। जीवन भर जेल में एकाकी मृतवत् पड़े रहने के बदले अपराधी यही चाहेगा कि वह दुनिया से ही कूच कर जाये तो अच्छा है।

राज्य का दृष्टिकोण यह है कि जिस व्यक्ति को और मनुष्यों के जीवन के प्रति कोई ममता नहीं, कोई दयाभाव नहीं है, उसके जीवन के प्रति राज्य को भी कोई दयाभाव न होना चाहिए। समाज केवल सुधार के बल पर ही नहीं टिका है बल्कि इस कारण भी कि लोगों में भय की स्वाभाविक प्रवृत्ति वर्तमान है। केवल अपराधियों के सुधार का ख्याल रखा जाये और अन्य बातों का नहीं, यह चल नहीं सकता और कभी चला नहीं है। अगर हर मानव-हत्यारे को इस बात का निश्चय हो जाये कि उसकी जान पर कोई आंच न आयेगी और उसे केवल कुछ वर्षों के लिए कारावास में बन्द ही रहना पड़ेगा, तो चाहे कितना भी हतोत्साहित करने वाला कारावास-दंड क्यों न हो उसका असर जाता रहेगा। आज जेलों में आमतौर पर यही होता है कि आजीवन कारावास का दंड पाया हुआ अपराधी सात, साढ़े सात साल के अन्दर रिहा हो जाता है क्योंकि उसे जब तब छूट मिला करती है जिससे उसकी कैद की मियाद बहुत कम हो जाती है। इसलिए एक हत्यारे को अगर इस बात का निश्चय हो जाये कि सात, साढ़े सात साल के अन्दर, जैसी भी दशा हो, उसके छूट जाने की आशा है तो प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिशोध के लिये अपना उपाय काम में लाने का उसका उपाय चाहे जो भी हो बढ़ावा मिलेगा। उदाहरण के लिए आप गोडसे की ही घटना लीजिए।

***उपाध्यक्षः** इस विशेष व्यक्ति का यहां कोई उल्लेख नहीं होना चाहिये।

***श्री के. हनुमन्थय्याः** अगर कोई आदमी एक महत्त्वपूर्ण या महान् व्यक्ति की हत्या का सहारा लेता है और इस बात का उसे निश्चय हो जाता है कि सात या आठ साल के अन्दर वह छूट जायेगा तो उस कुकृत्य की पुनरावृत्ति करने में वह जरा भी द्विधा बोध न करेगा। और आज जो हालत हैं, उसमें मृत्यु-दंड को उठाना, राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से तथा समाज की स्थिरता की दृष्टि से बहुत ही बुद्धिहीनता का काम होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** (बम्बई : जनरल): इस संशोधन को मैं नहीं स्वीकार करता हूं।

उपाध्यक्ष: अब मैं इस संशोधन पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 11 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद जोड़ा जाये:

'11-B. Capital punishment except for sedition involving use of violence is abolished.' ''

(सिवाय राजद्रोह के जिसमें हिंसा प्रयुक्त होती हो और अपराधों के लिए मृत्यु-दंड का अन्त किया जाता है।)

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 10

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 10 को ले सकते हैं सभा के सामने प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 10 को विधान का अंग समझा जाये।''

अब मैं संशोधनों को देखता हूं। उसके बाद हम विचार कर सकते हैं।

संशोधन नं. 326 केवल शाब्दिक है और इसकी अनुमति मैं नहीं देता हूं।

संशोधन नं. 327 श्री ताहिर का है और इस पर कुछ सदस्यों ने यह आपत्ति की है कि यह बोधगम्य नहीं है। शायद श्री ताहिर इसका समाधान करेंगे।

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (1) में 'of employment' की जगह 'acquisition' शब्द रखा जाये।'+

+नोट: मूल अनुच्छेद 10 (1) अंग्रेजी में यों है:

''There shall be equality of opportunity for all citizens in matters of employment under the State.''

इस सम्बन्ध में मैं कोई लम्बा भाषण नहीं देना चाहता हूं। मैं केवल यही कहना चाहता हूं कि यहां दो पहलू हैं। एक तो नियुक्ति का और दूसरा अवाप्ति का। नियुक्ति का उल्लेख पहले ही हो चुका है। इसलिए मैं चाहता हूं कि यहां अवाप्ति को जोड़ दिया जाये। मेरा कहना इतना ही है।

(संशोधन नं. 328 और 329 नहीं पेश किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 330 और 331 दोनों ही शाब्दिक हैं, इसलिए उनको पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती है।

(संशोधन नं. 332 नहीं पेश किया गया।)

संशोधन नं. 333, 335 तथा 337 (इसका पहला अंश) एक ही है। संशोधन नं. 337 के प्रथम भाग को पेश करने की मैं अनुमति दे सकता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान, कि:

+''अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'on grounds only' की जगह 'on grounds' शब्द रखे जाये।''

असल में यह प्रस्ताव केवल ''only'' शब्द को हटाने के लिए रखा गया है जो अनावश्यक है और कुछ कठिनाई पैदा करता है। कई और सदस्यों ने भी इसी कठिनाई का अनुभव किया है जैसा कि इसी आशय के अन्य कई आये हुए संशोधनों से स्पष्ट है।

***उपाध्यक्ष:** दूसरा संशोधन है नं. 334 का।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मेरा प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (2), (3) और (4) हटा दिये जायें।''

+नोट: मूल अनुच्छेद 10 (2) का मूल रूप यह है:

''No Citizen shall, on grounds only of religion, race, caste sex, descent, place of birth or any of them, be ineligible for any office under the State.''

[श्री लोकनाथ मिश्र]

इसको लेकर मुझे कोई लम्बा भाषण देने की जरुरत नहीं है। मेरी समझ से खंड (1) में सभी बातें आ जाती हैं और खंड (2) तो निश्चित रूप से खंड (1) के अंतर्गत आ जाता है। और खंड (3), जिसमें पिछड़े हुए वर्गों के पक्ष में नियुक्तियों के सम्बन्ध में आरक्षण (reservation) का उल्लेख किया गया है, वस्तुतः अनावश्यक है क्योंकि इससे मन्दता तथा अक्षमता के लिए (backwardness and inefficiency) विशेषाधिकार देकर एक प्रकार से आप इन दुर्गुणों को प्रश्रय देते हैं काम-धाम, खाना, कपड़ा, वासस्थान आदि चीजों को पाने का सबको अधिकार है पर किसी भी नागरिक को मूलाधिकार के रूप में यह अधिकार नहीं प्राप्त है कि राजकीय नौकरियों का कुछ एक भाग विशेष उसे मिले ही। राज्य की नौकरियों में तो नियुक्तियां केवल योग्यता के आधार पर ही होनी चाहिए। यह मूलाधिकार कभी नहीं माना जा सकता। अगर हम ऐसे अधिकार को स्वीकार कर लेते हैं तो यह उदारता कही जा सकती है, पर ऐसी उदारता से तो उन्हीं लोगों का अहित होगा जिनके पक्ष में यह बरती जायेगी। खंड (4) को मैं इसलिए अनावश्यक समझता हूं कि जब हमारा राज्य असाम्प्रदायिक राज्य बनने जा रहा है तो धार्मिक संस्थानों से इसे कोई सम्पर्क ही नहीं रखना चाहिए और राज्य को किसी भी धार्मिक संस्था के प्रबंध की चिन्ता ही न करनी चाहिए। इसलिए उन धार्मिक संस्थाओं के सम्बन्ध में, जो कि राज्य की देख-भाल के बाहर हैं, समिति की नियुक्ति में आरक्षण की बात ही हमें न सोचनी चाहिए। इन कारणों से खंड (2), (3) तथा (4) को मैं अनावश्यक समझता हूं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 336 और 341 एक ही आशय के हैं। 336 को पेश करने को अनुमति मैं दे सकता हूं।

श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः मैं प्रस्ताव करता हूं कि

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जायेः

'(2) Every citizen shall be eligible for office under the State irrespective of his religion, caste, sex, descent or place of birth.' ''

(धर्म, जाति, लिंग, वंश अथवा जन्मस्थान सम्बन्धी किसी भेद-भाव के बिना, राज्याधीन पद के लिए प्रत्येक नागरिक पात्र होगा।)

''the State'' शब्द को सभा रखना चाहती है इसलिए अपने संशोधन में मैंने थोड़ा परिवर्तन कर दिया है।

इस संशोधन को प्रस्तावित करने का एकमात्र कारण यही है कि इसका वाक्-विन्यास अधिक स्पष्ट है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): संशोधन नं. 341 को मैं नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** श्री ताहिर अब अपने संशोधन नं. 338 का दूसरा हिस्सा पेश कर सकते हैं। पहला हिस्सा पेश करने की अनुमति इसलिए नहीं दे रहा हूं कि वह केवल शाब्दिक है।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'for any office' शब्दों के बाद 'or employment' शब्द रखे जायें।''

खंड का संशोधित रूप यह होगा।

''(2) No citizen shall, on grounds only of religion, race, caste, sex, descent, place of birth or any of them be ineligible for any office or employment under the State.''

(कोई नागरिक केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, वंश, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर, राज्याधीन किसी पद या नियुक्ति के लिए अपात्र न होगा।)

यह तो सीधी और साफ बात है कि जहां तक 'पद' का सम्बन्ध है, यह खंड बिल्कुल सही है किन्तु नियुक्तियों के सम्बन्ध में, जिसके अन्दर, मेरी समझ से अन्यत्र की नियुक्तियां भी आ जाती है, यहां कोई व्यवस्था नहीं है। इसलिए, मैं समझता हूं कि 'office' शब्द के बाद 'or employment' का रखना बहुत जरूरी है। आशा है प्रस्तावक महोदय इसे स्वीकार करेंगे।

***उपाध्यक्ष:** श्री अनन्तशयनम् आयंगर अब अपना संशोधन नं. 342 पेश कर सकते हैं।

(*संशोधन नं. 342 नहीं पेश किया गया*)

***उपाध्यक्ष:** अब प्रो. के.टी. शाह संशोधन नं. 339 पेश कर सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): मेरा प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'place of birth' शब्दों के बाद 'in India' शब्द जोड़े जायें।

खंड का संशोधित रूप यह होगा:

''No citizen shall, on grounds only of religion, race, caste, sex, descent, place of birth in India, or any of them be ineligible for any office under the State.''

(कोई नागरिक केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, वंश, भारतीय जन्म-स्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर, राज्याधीन पद के लिये अपात्र न होगा।)

इस संशोधन को मैं यह बताने के लिये पेश कर रहा हूं कि यह देश इतना विशाल है कि यहां की ही आबादी से हमें उन सभी गुणों से सम्पन्न पर्याप्त लोग मिल जायेंगे जो किसी भी दायित्व और विश्वास के पद को सुचारू रूप से निभाने के लिये आवश्यक हैं अन्य उपनिवेशों और देशों ने अपने देशों में, नियुक्तियों के सम्बन्ध में आरक्षण की अलिखित व्यवस्था कर रखी है। कहने का अभिप्राय यह है कि पहले वह अपने ही नागरिकों को पद देते हैं, उनकी नियुक्ति करते हैं। इस सम्बन्ध में कई देशों और उपनिवेशों का उदाहरण हमारे सामने है और ऐसी व्यवस्था करके हम कोई नई बात नहीं कर रहे हैं। इस खंड में अगर आप ''in India'' शब्द रखते हैं तो इससे यह आवश्यक नहीं है कि जो भारत में न उत्पन्न हुए हों उनके विरुद्ध भेदभाव बरता जायेगा। केवल इतना ही व्यक्त करने के लिये ये शब्द रखे जा रहे हैं कि भारत में किसी का जन्मस्थान कहीं भी हो, उसके आधार पर उसकी नियुक्ति में कोई भेदभाव न बरता जायेगा। मैं इसे न केवल एक तर्क-संगत सुझाव ही समझता हूं बल्कि इसे मैं बहुत आवश्यक

मानता हूं। थोड़े अरसे के अन्दर हमने जो अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की है और इससे एक प्रभाव जो पड़ा है वह हमें कामनवेल्थ में शामिल होने और उन देशों के साथ बंधने पर जोर दे रहा है और पता नहीं हम कैसे और कहां पहुंचेंगे। व्यक्तिगत रूप से मेरा मत यह है कि इस प्रकार के आरक्षण की व्यवस्था केवल इसी अभिप्राय से नहीं की जा रही है कि दुर्भावना पैदा करने वाले ऐसे भेदभाव के सम्बन्ध में न्याय बरता जाये, बल्कि यह व्यवस्था इस कारण से भी की जा रही है कि हमारी रक्षा, विकास एवं समुन्नति के लिये जो कुछ आवश्यक है उसकी प्राप्ति हमारे ही बच्चे, इस देश के ही नर-नारी कर सकते हैं। इसलिये इस देश में जो भी पद खाली हो या जो भी नियुक्ति करनी हो उसके लिये इस देशवासी का ही पहले हक है।

यह बताना आवश्यक है, श्रीमान्, कि कामनवेल्थ के कई भागों में, जैसे कि दक्षिणी अफ्रीका में ही, हमारे नागरिकों के, राष्ट्रजनों के विरुद्ध बड़ा ही भेदभाव बरता गया है और बड़े ही निन्दनीय एवं लज्जास्पद ढंग से। कामनवेल्थ में, जो कि वहां के लोग ऐसा कहते नहीं हैं और न कोई खास कानून बनाकर ही इसे व्यक्त करते हैं, पर वहां हर जगह ''ह्वाइट आस्ट्रेलिया'' या ''ह्वाइट कनाडा'' की नीति बरतते हैं जिसके द्वारा वह यही व्यक्त करते हैं कि अश्वेत लोगों की वहां जरूरत नहीं है और अगर वे वहां जायेंगे तो उन्हें कई अयोग्यताओं का शिकार होना पड़ेगा जिससे उनको सदा के लिये दिक्कत होगी। जब आज भी स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने पर भी हमें यही दु:खद अनुभव मिल रहा है तो मुझे कोई कारण नहीं दिखाई देता कि हम विधान में क्यों न यह व्यवस्था रख दें कि विश्वास और दायित्व के जो भी पद खाली होंगे उन पर पहले इस देश के नागरिकों को ही नियुक्त किया जायेगा।

जैसा कि मैंने शुरू में कहा है, इसका यह मतलब नहीं है कि अन्य देशीय नागरिकों के विरुद्ध हम खुले तौर पर भेदभाव बरतेंगे, यद्यपि विश्व के प्रमुख, देशों के प्रचलित विधानों में इस तरह के अनेक उदाहरण वर्तमान हैं। अगर हम ऐसा करते भी हैं तो यह कोई नई बात नहीं होगी। अपने इतिहास को देखते हुए, उन तकलीफों को देखते हुए जो हमने झेली हैं और इस बात को देखते हुए कि

[प्रो. के.टी. शाह]

सरकारी नौकरियों की सभी शाखाओं से विदेशियों ने हमारा निकासन दिया—उन विदेशियों ने जो इन सभी महकमों का शासन करते थे, जो हमारी समुन्नति सम्बन्धी आवश्यकताओं को गलत रूप में सदा हमारे सामने रखते थे। यह न केवल अनाश्चर्यप्रद ही होगा बल्कि अनुचित भी होगा और कम से कम मेरे लिये तो अवश्य ही, अगर विधान में इस आशय की एक स्पष्ट और खुली व्यवस्था रख दी जाये कि जिस जाति के लोगों ने यहां अपने पदों का दुरुपयोग किया, उससे अनुचित रूप से लाभ उठाया, उसके नागरिकों को यहां किसी भी पद पर नियुक्त नहीं किया जायेगा।

किन्तु इस सम्बन्ध में हमें विश्वस्त अधिकारियों ने समझाया है कि ''बीती ताहि बिसारि दे'' का हम अनुगमन करें और अपने इस दु:खद अतीत को भूल जायें। इन दु:खद स्मृतियों को पुनर्जागृत करने के लिये मैं दायी नहीं होना चाहता, अगर आप इन्हें भूल सकें तो भूल जाये। इसीलिये तो मैं यह स्पष्ट आदेश यहां रखवाना चाहता हूं कि केवल भारत में जन्मे व्यक्ति और इस देश के प्रति निष्ठा रखने वाले व्यक्ति ही यहां दायित्व और विश्वास के पदों पर नियुक्त किये जा सकेंगे। मैं इसे प्रकारान्तर से निषेधात्मक रूप में नहीं रखना चाहता हूं, अर्थात् यह नहीं कहूंगा कि भारत के बाहर जन्मा कोई व्यक्ति यहां कोई विश्वास, दायित्व या लाभ अथवा अधिकार का पद न धारण कर सकेगा चाहे किसी को अतीत के अनुभव के आधार पर यह कितना ही उचित क्यों न प्रतीत हो। अपने अतीतकालीन दु:खद अनुभव के बावजूद भी हम यह उदारता दिखा सकते हैं, किन्तु मैं यह जरूर सोचता हूं कि जिस आरक्षण का मैं सुझाव दे रहा हूं वह भी बहुत जरूरी है। कहने का अभिप्राय यह है कि इस आशय की व्यवस्था विधान में जरूरी है कि विश्वास एवं दायित्व के जो भी पद होंगे वह केवल हमारे नागरिकों के लिए ही संरक्षित रखे जायेंगे। ऐसे लोगों के विरुद्ध जिन्होंने अपने अधिकार क्षेत्र में हमारे राष्ट्र जनों के विरुद्ध भेदभाव बरता है, बाध्य होकर हमें अभी हाल में इसी अधिकार का प्रयोग करना पड़ा है। अगर विधान में यही व्यवस्था रखी जाती है और ऐसा भेदभाव बरतने का अधिकार हमें नहीं रहता है जिसका कि मैं सुझाव दे रहा हूं, तो इसके अनुसार आगे ऐसा करने में हमें बड़ी

कठिनाई होगी। इसलिये मेरा यह मत है कि यह सुझाव अनुचित या नियम विरुद्ध नहीं है कि इस देश की नौकरियां इस देश के नागरिकों के लिये ही संरक्षित रखी जायें। आशा है सभा इसे स्वीकार करेगी।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): मैं चन्द शब्द कहना चाहता हूं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** जब इस पर विचार-विमर्श होने लगे तो आप अपनी बात कह सकते हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** सूची नं. 2 के संशोधन नं. 77 पर जब आपने पुकार की उस समय मैं सुन न सका यह भी अनुच्छेद 10 के ही सम्बन्ध में है। आपकी अनुमति से मैं इसे उपस्थित करता हूं। मेरा प्रस्ताव है कि:

''संशोधन सूची के संशोधन नं. 338 के सम्बन्ध में...''

***श्री एच.वी. कामत:** एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्। क्या इस समय संशोधन पर विचार किया जा रहा है अथवा अनुच्छेद और संशोधनों पर?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** मैं एक संशोधन पेश कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** बात यह है कि जब मैंने श्री आयंगर का नाम पुकारा कि वह अपना संशोधन पेश करें, उस समय उनका ध्यान कहीं और था और यहां क्या हो रहा है, इसका उन्हें ज्ञान नहीं था। अब वह अपना संशोधन पेश करना चाहते हैं। क्यों यह ठीक है न?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** हां, महोदय, यही बात है।

***उपाध्यक्ष:** आप को खासतौर पर रियायत दी जाती है और आप इसे पेश कर सकते हैं। आशा है सभा को मेरी यह बात स्वीकार है।

***माननीय सदस्यगणः** अवश्य।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** आपकी अनुमति से, श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

''That with reference to amendment No. 338 of the List of Amendments–

(i) in clause (1) of article 10, for the words 'in matters of employment' the words 'in matters relating to employment or appointment to office' be substituted; and

(ii) in clause (2) of article 10, after the words 'ineligible for any' the words 'employment or' be inserted.''

[संशोधन सूची के संशोधन नं. 338 के सम्बन्ध में:

(क) अनुच्छेद 10 के खंड (1) में ''नियुक्ति के विषय में'' शब्दों की जगह ''सेवायुक्ति अथवा पद पर नियुक्ति के विषय में'' शब्द रखे जाये।

(ख) अनुच्छेद 10 के खंड (2) में ''किसी पद के लिए'' शब्दों के बाद ''किसी पद या नियुक्ति के लिये'' शब्द रखे जाये।

यह केवल इसी अभिप्राय से रखा जा रहा है कि बात स्पष्ट हो जाये और शब्द 'पद' भी इसमें आ जाये जिससे कि यह खंड और भी व्यापक अर्थ व्यक्त कर सके। इसके सम्बन्ध में और कुछ कहने की जरुरत नहीं है। मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि वह इस संशोधन को स्वीकार करे।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'birth' शब्द के बाद 'or residence' शब्द रखे जायें।''

ऐसा होने पर खंड का यह रूप होगा:

''No citizen shall, on grounds only of religion, race, caste, sex, descent, place of birth or residence, or any of them, be ineligible for any office under the State.''

(कोई नागरिक केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, वंश, जन्म-स्थान अथवा वासस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर, राज्याधीन किसी पद के लिये अपात्र न होगा।)

मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि देश के प्रत्येक नागरिक को, चाहे वह जहां भी रहता हो, राज्याधीन नियुक्तियों के लिए समान अवसर मिलना चाहिये। प्रत्येक नागरिक को, चाहे उसका वासस्थान कहीं भी हो, देश में कहीं जो भी राज्याधीन सेवायुक्ति हो, उसके लिए चुने जाने की पात्रता प्राप्त होनी चाहिए। जब समस्त देश के लिए एक नागरिकता है तो देश के किसी भाग में, किसी कोने में जो भी सरकारी नौकरी हो उसके लिए रखे जाने का हर नागरिक को विशेषाधिकार, अनियन्त्रित अधिकार होना चाहिए। यदि संयुक्तप्रान्त में कोई सरकारी नौकरी हो तो बंगाल, मद्रास, बम्बई या मध्यप्रान्त के वासी को भी उस पर नौकर होने का अधिकार होना चाहिये और इसी प्रकार संयुक्तप्रान्त के निवासी को भी देश के अन्य प्रान्त में जो सरकारी नौकरी हो उसके लिए रखे जाने का अधिकार होना चाहिए अगर उस पद के लिए अपेक्षित अन्य योग्यताएं वह रखता है। हर नागरिक के मन में यह भाव उत्पन्न करना चाहिए कि वह समस्त भारत का नागरिक है न कि किसी प्रान्त विशेष का जहां कि वह वास करता है। उसको यह अनुभूति होनी चाहिए कि देश में जहां भी वह जाये उसे सरकारी नौकरी पर नियुक्ति होने के सम्बन्ध में वही अधिकार प्राप्त हैं जो उसे प्रान्त विशेष में प्राप्त हैं। दुर्भाग्यवश कुछ दिनों से हम यह देख रहे हैं कि देश में प्रान्तीयता की भावना बढ़ती जा रही है। ''बंगाल बंगालियों के लिये है'', ''मद्रास मद्रासियों के लिये है'' तथा अन्य ऐसे ही और नारे हमें रह-रह कर सुनाई देते हैं। ये आवाजें देश की एकता और अखंडता के लिये हानिकर हैं। हम देखते हैं कि कई प्रान्तीय सरकारों ने यह नियम बना रखा है कि प्रान्त की नौकरियों में वही लोग रखे जायेंगे जो उस प्रान्त में कई वर्षों से रहते आ रहे हैं। हमें यह बताया गया है कि हमारे एक

[श्री जसपतराय कपूर]

प्रान्त में तो ऐसा नियम बना दिया है कि वहां सरकारी नौकरी में वही रखे जायेंगे जो 52 वर्ष तक वहां रह चुके हों। मैं नहीं जानता कि यह कहां तक सच है। यह समाचार जो मुझे दिया गया है सम्भवत: उसमें कुछ अतिशयोक्ति है, पर यह सच बात है कि प्रान्त के लोग अपनी सरकारों को ऐसे नियम बनाने के लिये बाध्य कर रहे हैं, ताकि दूसरे प्रान्त के निवासियों को वहां की सरकारी नौकरियों में घुसने से रोका जा सके। अगर कोई प्रान्तीय सरकार ऐसा नियम बनाये कि वहां की सरकारी नौकरियों में नियुक्त किये जाने का वही पात्र होगा जिसे वहां की भाषा का पर्याप्त ज्ञान हो तो यह बात तो आसानी से समझ में आ सकती है। अगर यह नियम बनाया जाता है कि प्रान्त की सरकारी नौकरियों में वही रखे जायेंगे जिन्हें वहां की दशा का पर्याप्त ज्ञान है तो यह बात भी मैं समझ सकता हूं।

***उपाध्यक्ष:** जो सदस्य बोलने के लिये खड़े हैं उनसे ज्यादा तो बैठे हुए सदस्यगण ही आपस में बोल रहे हैं।

***श्री जसपतराय कपूर:** मैं यह कह रहा था, श्रीमान्, कि अगर इस ख्याल से कि सरकारी काम सुचारू रूप से चल सके। प्रान्तीय सरकारें, यह नियम बना लें कि प्रान्त की सरकारी नौकरियों में वही नियुक्त किये जा सकें, जिन्हें प्रान्त की भाषा का पर्याप्त ज्ञान है तो यह बात समझ में आ सकती है। इसके लिए स्थानीय दशा का ज्ञान भी अगर आवश्यक ठहरा दिया जाये तो इसे समझ सकता हूं। ये सारी शर्तें तो समझ में आ सकती है। क्योंकि सरकारी काम को सुचारू रूप से चलाने के लिए ये जरूरी है। किन्तु यह नियम रखना कि प्रान्त की सरकारी नौकरियों में नियुक्त किये जाने का वही पात्र होगा जो वहां 52 वर्ष रह चुका है, बिल्कुल बुद्धि-शून्य है। 52 वर्ष का आदमी अगर नियुक्त हो तो वह केवल 3 साल ही और तो काम कर सकेगा क्योंकि इतने में उसकी मियाद पूरी हो जायेगी। मेरा कहना यह है, श्रीमान्, इस प्रवृत्ति का हमें कठोरता से शमन करना होगा। इसलिए मैं कहूंगा कि सरकारी नौकरियों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का ऐसा प्रतिबंध नहीं रखना चाहिए जब तक कि सुचारू रूप से काम करने के लिए ही यह आवश्यक न हो। देश को एक रखना ही होगा चाहे इसके लिए हमें जो कीमत चुकानी पड़े। देश की अखंडता की रक्षा हमें हर मूल्य देकर करनी ही

होगी। राष्ट्र की एकता को स्थायी रखने के लिए हम जो भी कर सकते हैं, हमें करना चाहिए और मैंने जो संशोधन रखा है वह उसी उद्देश्य से रखा है और इस दिशा में यह संशोधन हमारा एक कदम है। मैं सभा से सिफारिश करूंगा कि वह इसे स्वीकार करे।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 340 पर दो संशोधन आये हैं पहला है नं. 81 जो सूची 3 में है।

***श्री के.एम. मुंशी** (बम्बई : जनरल): मेरा प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) के सम्बन्ध में संशोधन सूची में जो 340 नं. का संशोधन है उसमें 'or residence' शब्दों की जगह, जिन्हें रखने का वहां प्रस्ताव है, 'residence' शब्द रखा जाये।"

यह संशोधन केवल शाब्दिक है क्योंकि आगे चल कर 340 नं. के संशोधन में ''or any of them'' शब्द आते हैं। खंड की सम्पूर्ण भाषा की एकरूपता के लिए यह आवश्यक है; इसलिए मैं इसे पेश करता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** क्या शाब्दिक संशोधनों पर अब रोक नहीं है?

***श्री के.एम. मुंशी:** यह निर्णय देना कि प्रस्तुत संशोधन उस श्रेणी में आता है या नहीं, अध्यक्ष का काम है।

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य ने जो सुझाव दिया है उसके लिए मैं अनुग्रहीत हूं और उस पर विचार किया जायेगा। श्री मुंशी, आप अपनी बात कहिए।

***श्री के.एम. मुंशी:** बस मुझे इतना ही कहना है। खंड में ''residence'' शब्द के पहले जो ''or'' शब्द है उसे हटाने के लिए ही यह रख रहा हूं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल) : मैं जो संशोधन पेश करने जा रहा हूं वह यों है:

''संशोधन नं. 340 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 10 के खंड (2) के पश्चात् निम्नलिखित नया खंड जोड़ा जाये:

''(2 a) Nothing in this article shall prevent Parliament from making any law prescribing in regard to a class or classes of employment

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

or appointment to an officer unde any State for the time being specified in the First Schedule or any local or other authority within its territory, any requirement as to residence within that State prior to such employment or appointment.''

[(2क) इस अनुच्छेद की किसी बात से संसद को ऐसा कानून बनाने में कोई रुकावट न होगी जो सेवायुक्तियों के किसी वर्ग या वर्गों के सम्बन्ध में अथवा चालू समय के लिए प्रथम अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य के अधीन या उसके राज्य-क्षेत्रान्तर्गत किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन किसी पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में, ऐसी सेवायुक्ति या नियुक्ति के पूर्व उस राज्य में अभ्यर्थी के निवास को लेकर किसी प्रतिबंध का विनिधान करता हो।]

संशोधन में जो बातें रखी गई हैं, उसमें जो शब्द रखे गये हैं उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका उद्देश्य क्या है। अनुच्छेद के प्रथम भाग में उस आशय का एक आम नियम रखा गया है कि राज्याधीन नियुक्तियों या नौकरियों के सम्बन्ध में सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त रहेगा और इस व्यवस्था द्वारा यह बात बुनियादी तौर पर स्वीकार की गई है कि समस्त भारतवर्ष में एक भारतीय नागरिकता ही रहेगी। अनुच्छेद 10 के दूसरे पैराग्राफ में यही बात उलट कर निषेधात्मक रूप में कही गई है, अर्थात् यह कि कोई नागरिक धर्म, जाति, प्रजाति, लिंग, वंश या जन्म स्थान आदि के आधार पर राज्याधीन किसी पद के लिए अपात्र न होगा। उसमें बाद के जो दो खंड हैं वे, अनुच्छेद के पहले भाग में जो बुनियादी सिद्धान्त और सामान्य नियम रखे गये हैं, उनके अपवादों को व्यक्त करते हैं। अब प्रस्तुत संशोधन यह कहता है कि राज्याधीन नियुक्तियों के सम्बन्ध में, विशेष कारणों से इस आशय की व्यवस्था का रखना आवश्यक हो सकता है कि राज्य द्वारा राज्य के अन्दर नियुक्त किये जाने के लिए वहां का निवास अपेक्षित है। यही इस संशोधन का अभिप्राय है और बजाय ऐसा करने के कि निवास के सम्बन्ध में व्यक्तिगत रूप से राज्य जो चाहें नियम निर्धारित करें, ज्यादा अच्छा यह समझा गया कि संसद् (पार्लियामेंट) ही एक व्यापक नियम बना दे जो सभी राज्यों पर समान रूप से लागू हों, खास कर यह देखते हुए कि मूलाधिकारों से सम्बन्ध रखने वाले किसी भी मसले के लिए केवल संसद को ही कानून बनाने का अधिकार

है, भिन्न-भिन्न इकाइयों को नहीं ऐसी स्थिति में सभा के विचारार्थ मैं यह संशोधन उसके समक्ष उपस्थित करता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** एक स्पष्टीकरण चाहता हूं, श्रीमान्। माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी से मैं यह जानना चाहता हूं कि यहां ''any State for the time being specified in the First Schedule'' (इस समय के लिए प्रथम अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य) शब्द रखे गये हैं, ये क्या प्रथम अनुसूची के चारों भागों के लिये लागू हैं? प्रथम अनुसूची में चार भाग हैं। तीन भागों में तो ''States'' (राज्यों) का उल्लेख है और अन्तिम भाग में अंडमान और निकोबार द्वीपसमूहों के सम्बन्ध में हैं। अनुच्छेद 1 को पहले ही पास कर चुके हैं जिसके खंड (2) में कहा गया है कि ''राज्यों से प्रथम अनुसूची के भाग 1, 2 और 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्य अभिप्रेत होंगे।'' मैं उनसे यह जानना चाहता हूं कि ''any State for the time being specified in the First Schedule'' शब्दों में क्या वे सभी राज्य और राज्यक्षेत्र आ जाते हैं जो प्रथम अनुसूची के चारों भागों में वर्णित हैं? अगर ऐसा है तो इस संशोधन की भाषा में कुछ सुधार और परिवर्तन करना होगा। तब इसे यों रखना होगाः ''under any State or territory in the first four Parts I, II, III and IV of the First Schedule'' (प्रथम अनुसूची के प्रथम चार 1, 2, 3 तथा 4 भागों में उल्लिखित किसी राज्य या राज्यक्षेत्र के अधीन) और अगर आप केवल ''State'' शब्द को रखना चाहते हैं तो यह इस प्रकार का होगाः ''under any State specified in Parts I, II, III and IV of the First Schedule.''

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** यह तो स्पष्ट है कि हमने भागों का उल्लेख नहीं किया है। हमने केवल ''First Schedule'' कहा है और इसमें वह सभी राज्य आ जाते हैं जिनका प्रथम अनुसूची में उल्लेख है।

***श्री एच.वी. कामतः** अनुच्छेद 1 में कहा गया है किः ''राज्यों से प्रथम अनुसूची के भाग 1, 2, 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्य अभिप्रेत होंगे।'' भाग 4 में जिन प्रदेशों का उल्लेख है वह हमारे विधान के अनुसार राज्य नहीं हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इसमें अन्तर दर्शाने का कोई प्रयास न होना चाहिए।

***श्री एच.वी. कामतः** अगर मेरी बात का कोई जवाब नहीं है तो मुझे कुछ नहीं कहना है।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** अगर आप प्रथम अनुसूची को ही देखें तो आपको मालूम हो जायेगा कि भाग 1 में उन राज्य-क्षेत्रों का उल्लेख है जो इस विधान के आरम्भ होने वे सद्य-पूर्व गवर्नर के प्रान्तों के नाम से ज्ञात हों। भाग 2 में उन प्रदेशों का उल्लेख है जो इस विधान के आरम्भ होने के सद्य पूर्व चीफ कमिश्नर के प्रान्तों के नाम से ज्ञात हों; जैसे कि दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा आदि प्रान्त। भाग 3 में देशी राज्यों की चर्चा है। ये तीनों प्रकार के प्रदेश अनुच्छेद 1 में 'राज्य' के नाम से उल्लिखित और वर्णित हैं। प्रथम अनुसूची के भाग 4 में अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह हैं। ये राज्य नहीं हैं बल्कि केवल राज्यक्षेत्र हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह राज्य नहीं हैं, यह आप कैसे मान सकते हैं? मेरी समझ में नहीं आता कि आप इस कठिनाई को कैसे दूर कर सकते हैं?

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** अंडमान आदि द्वीपसमूह तो केन्द्र के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत रहेंगे और वे केन्द्रीय अधिकार-क्षेत्र के अन्दर आने वाले भागों में हैं। अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह पर तो यह आवास सम्बन्धी सिद्धान्त लागू नहीं होता। इनके सम्बन्ध में मूल अभिप्राय यह है कि जहां तक इन द्वीपसमूहों का सम्बन्ध है केन्द्र को इनके बारे में पूरा अधिकार होना चाहिए। भाग 1, 2, तथा 3 में उल्लिखित राज्यों का जहां तक सम्बन्ध है उनको यह अधिकार होना ही चाहिए कि अपने यहां की सरकारी नौकरियों पर नियुक्ति के लिये वह यह नियम रख सकें कि वहां का आवास अपेक्षित होगा।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरी समझ से तो यह कहना ठीक होगा:

''under any State or territory comprised in Parts I, II, III and IV of the First Schedule'' या यों कि ''any State specified in Parts I, II and III of the First Schedule''। अन्यथा कठिनाई बनी ही रहेगी।

***उपाध्यक्षः** मेरा सुझाव है कि हम लोग दूसरे संशोधनों को लें और इस बीच में माननीय सदस्य श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर से मिल कर यह कोशिश करें कि श्री अय्यर उनका मत मान लें। मेरी समझ से हमारी कठिनाई का यही व्यावहारिक समाधान है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मेरा सुझाव है कि चूंकि यह केवल शाब्दिक संशोधन है, इसे हम मसौदा-समिति पर छोड़ दें।

***उपाध्यक्षः** मैं अब दूसरा संशोधन लेता हूं। इस पर अभी हम राय लेने नहीं जा रहे हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं किः

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'ineligible' शब्द के बाद 'or discriminatory against' शब्द रखे जायें।''

ऐसा तो है नहीं कि केवल नियुक्ति के प्रारम्भ में ही भेद-भाव बरता जा सके, बल्कि नियुक्ति के बाद भी यह भेदभाव बरता जा सकता है कि उसे हमेशा के लिये उसी पद पर रहने दिया जाये, जहां वह शुरू में नियुक्त किया गया था। कहने का मतलब यह है कि तरक्की आदि के सम्बन्ध में भी भेदभाव बरता जा सकता है। नियुक्ति सम्बन्धी अपात्रता में यह सभी बातें नहीं आ सकती है। इसलिये इसे स्पष्ट करने के लिये तथा इसके उद्देश्य को कार्यान्वित करने के लिये 'or discriminatory against'' शब्द रखने आवश्यक है। मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि वह इसे स्वीकार करे।

(संशोधन नं. 343 नहीं पेश किया गया।)

***श्री दामोदरस्वरूप सेठ** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मेरा यह प्रस्ताव है किः

''अनुच्छेद 10 का खंड (2) हटा दिया जाये।''

इसका कारण यह है कि वह खंड यों देखने में तो बहुत ठीक और तर्कसंगत है पर सैद्धांतिक दृष्टि से यह गलत है। नौकरियों में नियुक्ति या पद के सम्बन्ध में पिछड़े हुए वर्ग के पक्ष में आरक्षण की व्यवस्था रखने का मतलब ही यह है कि न अच्छी हुकूमत रह जायेगी और न शासन-सम्बन्धी कार्य ही दक्षतापूर्वक

[श्री दामोदरस्वरूप सेठ]

चल सकेगा। और फिर ''पिछड़े हुए वर्ग'' की व्याख्या करना भी आसान नहीं है। किसी पिछड़े हुए सम्प्रदाय या वर्ग को परखने की क्या कसौटी होगी, यह भी तय करना कठिन है। अगर यह नया खंड रखा जाता है तो इसका परिणाम यह होगा कि आलोचनाएं होंगी और पक्षपात बढ़ेगा और इन बातों का असाम्प्रदायिक राज्य में कोई स्थान नहीं होना चाहिए। मेरा यह मतलब नहीं है कि पिछड़े हुए वर्ग को शिक्षा-सम्बन्धी योग्यता बढ़ाने के लिए तथा जीवन-स्तर ऊंचा करने के लिए जरूरी सुविधाएं और रियायतें न दी जायें मेरा मतलब यही है कि पदों पर उम्मीदवारों को नियुक्त करने का काम पब्लिक सर्विस कमीशन के ही विवेक पर हमें छोड़ देना चाहिए और किसी भी वर्ग को इस आधार पर हमें कोई भी रियायत नहीं देनी चाहिए कि वह दलित वर्ग का व्यक्ति है।

***उपाध्यक्ष:** अब हम 345 से 349 नं. के संशोधनों को लेते हैं। ये सब एक ही आशय के हैं।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): 345 नं. का संशोधन मैं नहीं पेश कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** 346 से 349 के संशोधनों में संशोधन नं. 348 को चुनता हूं जो पं. हृदयनाथ कुंजरू के नाम में है।

पं. हृदयनाथ कुंजरू (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (3) में 'shall prevent the State from making any provision for the reservations' (राज्य को पिछड़े हुए किसी जानपद वर्ग के पक्ष में नियुक्तियों के आरक्षण के लिए प्रावधान करने में कोई बाधा नहीं होगी) शब्दों की जगह ये शब्द रखे जाये: 'shall, during a period of ten years after the commencement of this Constitution, prevent the State from making any reservation.' ''

इसके स्वीकृत होने पर खंड (3) का रूप यह होगा:

''Nothing in this article shall during a period of ten years after

the commencement of this Constitution, prevent the State from making any reservation of appointments of posts in favour of any backward class of citizens who...etc.''

(इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को इस संविधान के प्रारम्भ होने के पश्चात् दस वर्ष की अवधि के अन्दर, पिछड़े हुए जानपद वर्ग के पक्ष में जिनका...नियुक्तियों अथवा पदों के आरक्षण (Reservation) के लिए प्रावधान करने में कोई अनुरोध न होगा)

सिद्धान्तत: मैं इसके विरुद्ध नहीं हूं कि उन वर्गों के हितों की रक्षा की जाये जो उस समय बिना मदद के अपनी देख-भाल खुद नहीं कर सकते। किन्तु इस अनुच्छेद का जो वर्तमान स्वरूप है उससे कई कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती है। पहली बात तो यह है कि ''पिछड़े हुए'' (backward) शब्द की व्याख्या विधान में कहीं भी नहीं दी गई है। विधान में 301 नं. का एक और अनुच्छेद है जिसमें पिछड़े हुए वर्गों की दशा की जांच करने के लिये एक कमीशन नियुक्त करने की बात कही गई है। किन्तु वहां यह कहा गया है कि जांच केवल उन्हीं वर्गों के सम्बन्ध में की जायेगी जो शिक्षा सम्बन्धी तथा सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। वहां भी उन वर्गों की कोई नामावली नहीं दी गई है जिनके सम्बन्ध में कमीशन जांच करेगा। यह अनुच्छेद तो और भी अनिश्चित रूप रखता है। अमुक वर्ग पिछड़ा हुआ है या नहीं इसके निर्णय का भार न्यायालयों पर नहीं छोड़ना चाहिए। इसलिए यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम 'पिछड़े हुए' की व्याख्या कर दें ताकि भविष्य में इसके अर्थ को लेकर कोई विवाद न खड़ा हों।

इस सम्बन्ध में दूसरी बात मैं यह कहता हूं। जो सम्प्रदाय जीवन की दौड़ में पीछे हैं उनके आरक्षण की व्यवस्था तो रखी जाये, पर ऐसा करने में क्या यह वांछनीय होगा कि इसके लिए जो विशेष प्रावधान रखे जायें वह अनिश्चितकाल तक लागू रहें? या राज्य तथा पिछड़े हुए वर्ग दोनों के हित में आप यह वांछनीय समझते हैं कि इन वर्गों के आरक्षण के लिये जो विशेष प्रावधान रखे जाये वह एक-एक निश्चित अवधि के लिए ही रखे जाये? अगर यह अनुच्छेद इसी रूप में रखा

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

जाता है और पिछड़े हुए वर्ग के पक्ष में नियुक्तियों अथवा पदों के आरक्षण की व्यवस्था रखी जाती है तो हो सकता है कि राज्य यह समझने लग जाये कि उसने यह व्यवस्था करके पिछड़े हुओं के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन कर दिया है। मैं समझता हूं और मेरा विश्वास है कि यह सभा, अगर इसे अपनी मर्जी पर काम करने दिया जाये तो इस बात से सहमत होगी कि वांछनीय यही है कि ऐसे प्रावधान के प्रवर्त्तन की समय-समय पर जांच करनी चाहिए ताकि हमें यह मालूम हो सके कि राज्य ने इन वर्गों को इनकी वर्तमान दशा से ऊपर उठाने के लिए तथा उन्हें इस योग्य बनाने के लिए कि वह अन्य वर्गों के साथ बराबरी के दर्जे पर मुकाबला कर सकें, यथोचित कार्रवाई की है या नहीं।

इस सम्बन्ध में मेरा तीसरा तर्क यह है, श्रीमान्, कि अल्पसंख्यकों के लिए, जिसमें दलित वर्ग और अनुसूचित जातियां भी अवश्य शामिल होनी चाहिये, विधान-मंडल के स्थानों के सम्बन्ध में जो प्रावधान रखा गया है, वह इस विधान के अनुसार एक सीमित अवधि के लिये है। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि इस समय इन वर्गों के लिये इस आशय का प्रावधान बहुत ही आवश्यक है और हर आदमी को यह बात साफ समझ में आती होगी कि विधायी-मंडलों में इनको प्रतिनिधान देना नौकरियों के प्रतिनिधान से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। अगर किसी सम्प्रदाय को विधायी-मंडल में प्रतिनिधित्व प्राप्त है तो समय-समय पर इसके प्रतिनिधि अपनी मांग के सम्बन्ध में वहां आवाज बुलन्द कर सकते हैं और इस बात की कोशिश कर सकते हैं कि नियुक्ति के सम्बन्ध में या अन्य मामलों में जो भी अन्याय उसके साथ हुआ हो उसका सुधार हो जाये। पर अगर विधायी-मंडल में इनका प्रतिनिधान समाप्त कर दिया जाता है तो अन्य मामलों में आप चाहे जो संरक्षण इन्हें दें इनकी अवस्था बड़ी ही असहाय रहेगी। अन्य जो सहायता आप इन्हें देते हैं उसके बन्द कर देने से इनका उतना अहित नहीं होगा जितना कि व्यवस्थापिकाओं में इनके प्रतिनिधान के समाप्त करने से होगा। अब विधान में यह प्रावधान रखा गया है कि अल्पसंख्यकों के लिये, जिसमें दलित और अनुसूचित जातियां भी शामिल हैं और जिसमें कि किसी भी परिभाषा के अनुसार हमें पिछड़े हुए वर्ग को शामिल करना चाहिए। स्थान सम्बन्धी जो संरक्षण

दिया गया है वह दस वर्षों के लिये ही सीमित है। अनुच्छेद 305 यह कहता है कि अल्पसंख्यकों के लिये, उनकी संख्या के आधार पर स्थान सम्बन्धी प्रतिनिधान के लिये जो प्रावधान है वह केवल दस वर्ष तक ही, अधिक नहीं, बिना किसी परिवर्तन के चालू रहेगा। विधान की प्रारम्भिक तिथि से दस वर्ष की अवधि बीतने पर यह प्रावधान समाप्त हो जायेगा, जब तक कि विधान में संशोधन करके इसके प्रवर्त्तन की अवधि को बढ़ाया न जाये। इस हालत में क्या यह वांछनीय न होगा कि इसी प्रकार का एक प्रतिबंध अनुच्छेद 10 के खंड (3) में भी रख दिया जाये? सच तो यह है कि ऐसा प्रतिबंध अनुच्छेद 10 में कहीं अधिक आवश्यक है बमुकाबले उस अनुच्छेद के जिसमें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शासन में नियुक्ति विषयक आरक्षण अल्पंसख्यकों को दिया गया है। दलित-वर्गों की हित-रक्षा की जो योजना है, अगर उसके अनुरूप अनुच्छेद 10(3) को रखना है तो मैं कहूंगा कि यह संशोधन, जो मैंने प्रस्तावित किया है, न केवल वांछनीय है बल्कि बहुत ही आवश्यक है और इसको स्वीकार करना चाहिए।

अब आखिर में मैं यह जानना चाहता हूं, श्रीमान्, कि अनुच्छेद 10(3) में तथा अनुच्छेद 296 में क्या परस्पर सम्बन्ध है। अनुच्छेद 296 कहता है कि 'संघ के अथवा प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उस समय उल्लिखित रहे राज्य के कार्यों से सम्बद्ध सेवाओं या पदों के लिए नियुक्तियों में, प्रशासन दक्षता को बनाये रखने का ध्यान रखते हुए सब अल्पसंख्यक समुदायों के दावों पर ध्यान रखा जायेगा।' अनुच्छेद 10 का खंड (3) उन सभी राज्यों के लिए लागू होता है जो प्रथम अनुसूची में उल्लिखित हैं। अब अनुच्छेद 10(3) में तथा 296 में, जो केवल उन्हीं राज्यों के लिये लागू हैं जो प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित हैं; क्या अन्तर है यह स्पष्ट है। इन दोनों में अन्तर क्या है यह तो स्पष्ट है, पर उन दोनों में सम्बन्ध क्या है यह बिल्कुल ही अस्पष्ट है। अनुच्छेद 296 अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में है। नौकरियों में नियुक्ति को लेकर अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के जो दावे होंगे उनका ध्यान रखा जाये, केवल इस आधार पर कि वे पिछड़े हुए लोग हैं। यद्यपि अनुच्छेद 296 में ''minority'' शब्द का प्रयोग किया गया है और अनुच्छेद 10(3) में ''backward'' शब्द का प्रयोग किया गया है, पर मुझे यही प्रतीत होता है कि देश के साथ इन्साफ करने के लिए संरक्षण

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

हर वर्ग को दिया जा सकता है चाहे उसे आप पिछड़ा हुआ वर्ग कहें या अल्पसंख्यक सम्प्रदाय कहें और वह संरक्षण केवल इस आधार पर दिया जा सकता है कि वह वर्ग पिछड़ा हुआ है और अगर उसकी देखभाल खुद उसी पर छोड़ दी जाती है तो वह अपने हितों की रक्षा न कर पायेगा। इससे प्रकट है कि इन दोनों अनुच्छेदों में परस्पर क्या सम्बन्ध है, इसे स्पष्ट करना जरूरी है, जैसा कि मैंने अभी कहा है। इसके अतिरिक्त मैं यह जानना चाहता हूं अगर अनुच्छेद 10 (3) पास हो जाता है तो क्या भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के वर्गों के लिए पदों या नियुक्तियों के सम्बन्ध में विशेष आरक्षण की मांग करना सम्भव होगा? अनुच्छेद 10(3) के पास हो जाने से हो सकता है कि राज्य के लिए यह सम्भव न हो कि वह अल्पसंख्यकों के लिये नौकरियों में कोई आरक्षण दे सके। पर इससे इन वर्गों को या अन्य सम्प्रदाय के लोगों को क्या यह प्रलोभन न मिलेगा कि वे भी पिछड़ा हुआ होने का दावा करें ताकि अनुच्छेद 10(3) की सुविधा उन्हें भी प्राप्त हो सके। मेरा कथन यह है, श्रीमान्, कि हमें ऐसी पद्धति रखनी चाहिए जिससे विघटनशील प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन न मिले और जिसके अधीन किसी भी वर्ग के लिए यह हितकर न हो कि वह पिछड़ा हुआ होने का दावा करे। इसलिए यह वांछनीय है कि हम संरक्षण सम्बन्धी जो भी प्रावधान रखें, उसके प्रवर्त्तन को सीमित रखने के लिए उसकी एक सीमित अवधि निर्धारित कर दें ताकि विधान-मंडल को समय-समय पर यह मालूम होता जाये कि प्रावधान ने कैसा काम किया है और राज्य ने संरक्षित वर्गों के प्रति किस तरह अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। जब तक ऐसा नहीं किया जाता है, मैं तो यही समझता हूं कि अनुच्छेद 10 व्यर्थ है और इस विधान का जो यह उद्देश्य है कि उन सभी दुखस्थाओं को दूर कर दिया जाये जिनके कारण विशेष संरक्षण देना जरूरी है, उसके अनुरूप यह अनुच्छेद 10 बन नहीं सकता। हम सभी को मालूम है कि अल्पसंख्यक समिति की रिपोर्ट पर जब सभा ने विचार किया था उस समय समूची सभा इस बात के लिए चिन्तित थी कि हर प्रकार के आरक्षणों को यथाशीघ्र समाप्त कर देना चाहिए। यह तो स्वीकार किया गया था कि अभी कुछ समय के लिये यह जरूरी है पर इस बात पर जोर दिया गया था कि अब जो भी आरक्षण देना जरूरी समझा जाये उसकी अल्पकालिक व्यवस्था ही की जाये ताकि देश की समस्त आबादी मिलजुल कर पूर्णतः एक हो जाये और किसी सम्प्रदाय या वर्ग को यह प्रलोभन न हो कि अपने लिए वह विशेष सुविधाओं की मांग करे। इन कारणों के आधार

पर मैं अपना संशोधन पेश करता हूं जोकि मुझे इसमें रंचमात्र सन्देह नहीं है कि मेरे मित्र डा. अम्बेडकर को यह हर्गिज पसन्द नहीं आयेगा।

***उपाध्यक्ष:** अन्य संशोधन जो इसी श्रेणी में आते हैं वे हैं नं. 346, 347 और 349 के। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या लोग यह चाहते हैं कि इन पर मैं मत लूं।

(*संशोधन न. 346, 347, 349, 350, 351 तथा 352 नहीं पेश किये गए।*)

संशोधन नं. 353 तथा 360 एक ही आशय के हैं और मैं चाहता हूं कि उन पर साथ ही विचार हो।

(*संशोधन नं. 353 तथा 360 नहीं पेश किये गये।*)

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): मैं अपना 353 नं. का संशोधन नहीं पेश कर रहा हूं, पर एक वक्तव्य देना चाहता हूं।

उपाध्यक्ष: वाद-विवाद के समय आप ऐसा कर सकते हैं।

अब हम संशोधन नं. 354 तथा 357 को लेते हैं।

(*संशोधन नं. 354 और 355 नहीं पेश किये गये।*)

श्री अज़ीज़ अहमद खां (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): जनाब सदर, मेरी तज़वीज़ यह है कि आर्टिकिल 10 के पैरा 3 से लफ्ज़ backward खारिज कर दिया जाये।

जनाबवाला, मुझे यह अर्ज़ करना है कि जिस वक्त माइनोरिटी रिपोर्ट यहां पेश हुई थी, उस वक्त यह लफ्ज़ backward उसमें नहीं था और इस मज़मून पर हम लोगों की राय मुस्तकिल तौर पर यह कायम हुई थी कि लफ्ज़ backward रखने की कोई खास जरुरत नहीं है। सोज़ यह कि अगर दस्तूर के पूरे मसौदे को देखा जाये तो मालूम होगा कि कई दफात इस किस्म की है कि जो अगर यह तरमीम मंजूर नहीं हुई तो दफ़ा 10 के खिलाफ हो जाती है। मसलन दफ़ा 266 और 267।

अभी मुझसे पहले जो तकरीर कुंजरू साहब ने की है, उसको मैंने गौर से सुना है। उनकी मंशा यह थी जो नये हालात हिन्दुस्तान के अन्दर पैदा हो गये हैं उनमें अगर कोई तहफ्फुज किया जा सकता है तो वह महज इस बुनियाद पर

[श्री अज़ीज़ अहमद खां]

किया जा सकता है कि कोई खास किस्म के ऐसे लोग हैं कि जो तालीमी ऐतबार से या तमद्दनी ऐतवार से नीचे दरजा के हैं। ऐसे लोगों के लिए हिफाजत की जरूरत है न कि अक्लियतों के लिए। उनकी राय में इन नये हालात में किसी क्लास और जमाअत को तहफ्फुज की जरूरत नहीं हैं। मेरी अपनी राय यह है कि असल में तहफ्फूज़ की जरूरत उन लोगों को है, जिनके दिल में यह अंदेशा हो सकता है कि अगर तहफ्फूज़ नहीं किया गया तो उनकी हिफ़ाजत नहीं होगी। मैं समझता हूं कि हुकूमत के मुलाजिमों में किसी एक खास क्लास की मोनोपोली हो जाने से दूसरों के दिल में यह ख्याल हो सकता है कि उनकी अहमियत को नज़रअन्दाज कर दिया गया, तो यह खुद मुल्क के अन्दर एक नागवार हालत को पैदा करने का बायस बन जायेगा। इस वास्ते मेरा ख्याल यह है कि तरमीम निहायत जरूरी हैं। हम समझते हैं कि हमको जो नया नक्शा मुल्क का बनाना है, उस में इख्तलाफ़ात नहीं पैदा करना चाहिए और न इख्तलाफ़ात को बढ़ाना चाहिए। लेकिन बावजूद इसके यह एक ऐसा मामला है कि हम मुल्क में जो नई तब्दीली कर रहे हैं तो उस तब्दीली में बहुत सी माइनोरिटीज ऐसी हैं कि जिनको तहफ्फुज़ की जरूरत है। उनके लिए तहफ्फुज़ करना चाहिए और आसानी से किया जा सकता है। दफा 263 में, जनाबवाला, इस तरह का तहफ्फुज़ खासतौर पर किया गया है और दफा 266 में भी इस तरह के तहफ्फुज़ के अल्फाज़ हैं।

मैं अर्ज करूंगा कि दरअसल हमें ऐसा मुल्क बनाना है कि जिसके अन्दर कोई तफरका न रहे, तो इसके लिए यह जरूरी है कि इस तरह की रोक न हो कि जो शख्स तालीमी काबिलियत रखता हो या जो कौमी अहमियत रखता हो, उसको यह महसूस हो कि उसको नज़रअंदाज किया जा रहा है। इसलिए अगर यह कानून तरमीम नहीं किया गया तो जो माइनोरिटीज़ हैं, उनके दिल में यह शुबा पैदा होगा कि हमारी अहमियत को मुल्क में नज़रअंदाज किया जा रहा है। मैं यह नहीं कहता कि हमको अपने मुल्क में जो मुलाजिम हों, उनमें 100 में से 20 सिख जरूर लेना है या 15 ईसाई जरूर लेना है या यह कि हमको 15 मुसलमान जरूर ले लेना है। मगर मैं यह चाहता हूं कि अगर सिख और मुसलमान और ईसाई और दूसरी जमातें इस मुल्क के अन्दर आबाद हैं अगर उनमें तालीमी काबिलियत है, अगर उनमें वह सेफ़ात हैं कि जिनकी उम्मीदवारों को जरूरत है, तो यह नहीं होना चाहिए कि उसको कतई नज़रअन्दाज कर दिया जाये। तो मैं

समझता हूं कि अगर हम इस लफ्ज को अपने कानून में से हटा देंगे तो फिर हमारे खिलाफ यह इल्जाम नहीं रहेगा कि किसी खास क्लास को नज़रअंदाज करने का कानून बना रहे हैं। मेरे ख्याल में अगर लफ्ज़ 'backward' को हटा दिया जायेगा तो गवर्नमेंट के हाथ ऐसे मजबूत हो जायेंगे कि वह वक्तन फब्क्तन ऐसे इंतजामात कर सकती है कि अगर किसी खास जात के आदमियों को मुलाजमत में नज़रअंदाज किया जाये तो उसको रोक सकें। मैं समझता हूं कि यह दफा गवर्नमेंट के हाथों को इस मजबूती से बांध देगी कि वह इस तरह की खराबियों का इंतजाम न कर सकेगी और मुल्क में जो तफरका है, वह बना रहेगा। तो इस बुनियाद पर मैं यह उम्मीद करता हूं कि हाउस इस तजबीज़ को जो कि यकीनन वह तज़बीज़ है, जो कि माइनोरिटी कमेटी की रिपोर्ट के माफिक है, मंजूर फरमायेगा।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर एक संशोधन है जो सूची 1 में नं. 49 का है। मैं देखता हूं कि यह पेश नहीं किया जा रहा है। अब आता है संशोधन नं. 357, जो श्री शंकर राव देव और आचार्य जुगल किशोर के नाम में है। ये दोनों सज्जन सभा भवन में उपस्थित नहीं हैं। दूसरा संशोधन है नं. 358 का जो केवल शाब्दिक है। संशोधन नं. 359, 361 तथा 362 को पेश करने की अनुमति मैं दे सकता हूं। नं. 359 श्री रणवीर सिंह के नाम में हैं और वह यहां हैं नहीं। इसके बाद आता है नं. 361, जो लोकनाथ मिश्र के नाम से है।

***श्री लोकनाथ मिश्रः** इसे मैं नहीं पेश कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 362 डा. पट्टाभि और अन्य सदस्यों के नाम में हैं। वे भी इसे नहीं पेश कर रहे हैं। नं. 362 प्रो. शाह के नाम में हैं इस संशोधन का दूसरा हिस्सा तथा संशोधन नं. 366 एक ही हैं।

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान् किः

''अनुच्छेद 10 के खंड (4) में 'in connection with' शब्दों के बाद 'managing' शब्द जोड़ा जाये और 'or denominational' तथा 'or belonging to a particular denomination' शब्द हटा दिये जाये।''

मेरा संशोधन स्वीकार हो जाने पर इस अनुच्छेद का रूप यह होगाः

''Nothing in this article shall affect the operation of any law which

provides that the incumbent of an office in connection with managing the affairs of any religious institution or any member of the Governing Body thereof shall be a person professing a particular religion.''

(इस अनुच्छेद की किसी बात का किसी ऐसी विधि के प्रवर्त्तन पर कोई प्रभाव न होगा जो प्रावधान करती हो कि किसी धार्मिक संस्था के कार्य-प्रबंध से सम्बद्ध कोई पदधारी अथवा उसके शासी मंडल का कोई सदस्य किसी विशेष धर्म का अनुयायी व्यक्ति ही होगा।)

इससे मूल अनुच्छेद के अन्य शब्द हट जायेंगे।

जहां तक कि मैं इस अनुच्छेद के उद्देश्य को समझ पा रहा हूं, वह यही है कि ऐसी संस्था जो कि केवल धार्मिक हो और जिसका कि किसी विशेष सम्प्रदाय या मत से ही खास तौर पर सम्बन्ध हो, उसका संचालन उसी धर्म, सम्प्रदाय या मत के अनुयायी व्यक्तियों द्वारा ही होना चाहिये और जो इनके अनुयायी न हों उन्हें उस संस्था के प्रबंध से सम्बद्ध न होने देना चाहिए। मगर आप ''in connection with''—अर्थात् ''any person holding any office in connection with'' इन व्यापक शब्दों को रखते हैं तो मेरी समझ से इसके अन्दर ऐसे अवैतनिक या आदरमूलक पद भी आ जाते हैं जो चन्दा या विशेष सहायता अथवा किसी सेवा के स्वीकृति-स्वरूप सम्मानार्थ दिये जाते हैं। कोई अन्य धर्म या मत मानने के कारण ही किसी की सेवा या चन्दा अथवा विशेष सहायता को बिल्कुल अमान्य करना उचित और न्यायसंगत नहीं जंचता है, खास करके उस हालत में जब उन संस्थाओं में धर्म या सम्प्रदाय सम्बन्धी कार्यों के अलावा अन्य कार्य भी होते हों।

उदाहरण के लिए शिक्षा-संस्थाओं को लीजिए जैसे कि विश्वविद्यालय, अस्पताल या ऐसी ही अन्य संस्थाओं को लीजिए जो किसी विशेष धर्म से सम्बन्धित हों और अपने धार्मिक कार्य में श्रद्धा से लगी हों। उनकी संचालन-व्यवस्था में ऐसे प्रावधान से व्यर्थ की अड़चनें आ सकती है, अगर उसमें यह संशोधन नहीं रखा गया जिसको कि मैंने प्रस्तावित किया है। ऐसी संस्थाओं में अवैतनिक पद-धारण

करने, या सभासद बनने पर अथवा अवैतनिक रूप से अध्यापन का कार्य करने पर कोई रोक न होनी चाहिए। मुझे इस बात का निश्चय है कि मसौदा बनाने वालों का कदापि यह अभिप्राय नहीं रहा होगा कि ऐसे अवैतनिक सम्बन्ध भी न रखे जा सकें। किन्तु मैं ऐसा समझता हूं कि मूल खंड में जो शब्द रखे गये हैं, उनसे गलत मतलब लगाया जा सकता है और कम से कम साधारण आदमियों की बुद्धि में तो गलत मतलब आ ही सकता है। इन शब्दों के कारण अति चतुर वकीलों को कभी-कभी यह मौका भी मिल सकता है कि वे इन प्रावधान से एक नया फायदा उठा लें।

इसलिए व्यक्तिगत रूप से मैं तो यह नहीं चाहूंगा कि यहां कोई ऐसी गुंजाइश रह जाये कि सम्प्रदाय को क्षति पहुंचा कर या उन आदर्शों को क्षति पहुंचा कर, जिनको कि हम यहां स्वीकार कर रहे हैं, कोई व्यक्ति अपने बुद्धिकौशल का ऐसा योग कर सके। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस आशय का प्रावधान बनाते समय विधान-निर्माताओं के मन में दो परस्पर विरोधी आदर्शों का संघर्ष चल रहा था। उनके दिमाग में एक तो यह आदर्श काम कर रहा था कि विधान जो बने वह एक पूर्णतः असाम्प्रदायिक राज्य के अनुकूल हो जिसमें धर्म को राज्य की ओर से कोई मान्यता न प्राप्त हो। और इसी आदर्श की प्रेरणा से यह कोशिश की गई कि जहां तक कि समाज के नागरिक जीवन का सम्बन्ध है, किसी धर्म, पन्थ या सम्प्रदाय के पक्ष या सम्बन्ध में भेद बरतने वाला कोई प्रावधान विधान में न रखा जाये।

दूसरी तरफ ऐसा प्रतीत होता है कि उन विशेष धर्मों या सम्प्रदायों के प्रति ममता भी सक्षम चेतना की दशा में उनको आन्दोलित कर रही थी। जिनकी संस्थाओं को, नीवियों (endowments) को तथा भित्तियों को बचाने की कोशिश की जा रही है और विधान में अपवाद रखकर जिन्हें इस खंड के प्रभाव से अलग रखा जा रहा है। आखिर मूल अनुच्छेद में जो सिद्धान्त सन्निहित है उसके लिए एक अपवाद के रूप में ही तो यह खंड 4 रखा गया है। और अपवादमूलक होने के कारण विशेष सम्प्रदायों की संस्थाओं को उनके प्रबन्ध के सम्बन्ध में इससे एक छूट

[प्रो. के.टी. शाह]

मिल जाती है। मसौदा बनाने वालों ने यह व्यवस्था सूक्ष्म चेतना की अवस्था में शायद यहां रखी है। कहने का मतलब यह है कि असाम्प्रदायिक राज्य के आधारभूत सिद्धान्त को अस्वीकार न करते हुए भी प्रकारान्तर से परोक्ष रूप से उन्होंने नये संशोधन या अपवाद रख दिये हैं जो मेरी निगाह में इस अनुच्छेद के समस्त प्रावधान के पीछे जो मूलभूत तत्त्व है उसको ही समाप्त कर देते हैं। इसलिये मैं समझता हूं कि अगर मेरे सुझाये शब्दों को यहां जोड़ दिया जाये यानी यह जोड़ दिया जाये कि किसी भी धार्मिक संस्था के प्रबन्ध में ऐसा कोई व्यक्ति सम्मिलित न हो सकेगा जो उस विशेष धर्म को न मानता हो तो इससे अर्थ स्पष्ट हो जाता है और हमारे प्रयोजन के लिए यह काफी है। ऐसा करने से हमारे मूल सिद्धान्त का प्रयोजन भी सिद्ध हो जायेगा। अगर यह प्रयोजन सिद्ध करना आपको अभिप्रेत है और साथ ही राज्य की ओर से जो कि किसी धर्म विशेष के साथ पक्षपात न करेगा, सभी सुरक्षा का तथा अहस्तक्षेप का आपको पक्का भरोसा हो जायेगा। मुझे तो इस संशोधन में कोई भी आपत्ति की बात नहीं दिखाई देती है। फिर भी मसौदा बनाने वाले सदस्यों की या उनके समर्थकों का इस सम्बन्ध में जो भी विरोध या आपत्ति होगी उसे मैं ध्यान से सुनूंगा। जब कि वे इस सम्बन्ध में अपनी आपत्ति नहीं बताते या मुझे अन्यथा नहीं समझा देते, मैं इन शब्दों के साथ इस संशोधन को स्वीकार करने की सभा से सिफारिश करूंगा।

(संशोधन नं. 364 नहीं पेश किया गया।)

उपाध्यक्षः नं. 365 शाब्दिक है और उसे पेश करने की अनुमति नहीं मिल सकती है।

(संशोधन नं. 367 और 368 नहीं पेश किये गए।)

***उपाध्यक्षः** सूची 2 के संशोधन नं. 82 के सम्बन्ध में श्री कामत ने कुछ आपत्ति उठाई है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्री मुंशी की व्याख्या से उन्हें संतोष हो गया है।

***श्री एच.वी. कामतः** नहीं, श्रीमान्, उनकी व्याख्या से मेरी कठिनाई दूर नहीं हुई है। मुझे जो सन्देह है वह भी दूर नहीं हुआ है। अगर वह समझा सकते हैं तो इस सम्बन्ध में उन्हें फिर समझाने दीजिए। मैं अपनी बात पर जोर दूंगा।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्री कामत ने जो सवाल उठाया है वह सचमुच परेशान करने वाला है और इस पर विचार करना जरूरी है। इसके बारे में तो कोई शक हो ही नहीं सकता। खैर, संशोधन इस प्रकार हैं:

''Nothing in this article shall prevent Parliament from making any law prescribing in regard to a class or classes of employment or appointment to an office *under the State* for the time being specified in the First Schedule or any local or other authority within its territory any requirement as to the *residence within that State* prior to such employment or appointment.''

(इस अनुच्छेद की किसी बात से संसद को ऐसा कानून बनाने में कोई रुकावट नहीं होगी, जो सेवायुक्तियों के किसी एक वर्ग या वर्गों के सम्बन्ध में, अथवा चालू समय के लिये प्रथम अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य के अधीन या उसके राज्य-क्षेत्रान्तर्गत किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन किसी पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में, ऐसी सेवायुक्ति या नियुक्ति के पूर्व, उस राज्य में अभ्यर्थी के निवास को लेकर किसी प्रतिबंध का विनिधान करता हो।)

'स्टेट' शब्द मसौदे में दो स्थलों पर आया है। एक तो अनुच्छेद 1 में और दूसरा अनुच्छेद 7 में। अनुच्छेद 1 में तो इस शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक है और राज्य-क्षेत्र के सम्बन्ध में व्यवहृत हुआ है और अनुच्छेद 7 में प्राधिकारियों के सम्बन्ध में व्यवहृत हुआ है। मैं अनुच्छेद 7 को पढ़ कर सुना देता हूं। उसमें कहा गया है:

[माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त]

''Unless the context otherwise requires, the State includes the Government and the Parliament of India and the Government and the Legislature of each of the States and of local or other authorities within the territory of India or under the control of the Government of India.''

(यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो, तो इस भाग में ''राज्य'' शब्द में भारत के शासन और संसद तथा राज्यों में से प्रत्येक के शासन और विधान-मंडल तथा भारत के राज्य-क्षेत्रान्तर्गत सब स्थानीय तथा अन्य प्राधिकारियों का समावेश है।)

इस तरह हम देखते हैं कि अनुच्छेद 7 'राज्य' शब्द की परिभाषा देता है पर राज्य-क्षेत्र के सम्बन्ध में नहीं, किन्तु उसके प्राधिकारी के सम्बन्ध में। अनुच्छेद 1 राज्य के क्षेत्र को व्यक्त करता है। इस संशोधन में राज्य-क्षेत्र तथा प्राधिकारी—दोनों का—ही उल्लेख किया गया है। जब हम यह कहते हैं—''राज्याधीन किसी पद पर नियुक्ति अथवा राज्याधीन कोई सेवायुक्ति''—तो इससे अर्थ ही यह होता है कि राज्य के प्राधिकारी के अधीनस्थ कोई पद या सेवायुक्ति। इसमें कुछ गलत नहीं है क्योंकि अनुच्छेद 7 से मतलब है, प्रथम अनुसूची के राज्यों के सभी राज्य-क्षेत्रों से। ज्योंही हम यह कहते हैं कि: ''यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो तो इस भाग में 'राज्य' शब्द में...'' तो, जहां तक इस अनुच्छेद 7 का सम्बन्ध है, इसमें समूची प्रथम अनुसूची आ जाती है और इस सम्बन्ध में किसी सन्देह की गुंजाइश ही नहीं है। और फिर अनुच्छेद 10 में कहा गया है कि राज्याधीन किसी पद पर नियुक्ति। इसमें कुछ भी गलत नहीं है क्योंकि यहां ''राज्याधीन'' का मतलब ही यह हुआ कि जैसा कि अनुच्छेद 7 में बताया गया है। और अनुच्छेद 7 में 'राज्य' की जो परिभाषा दी गई है उसके अन्दर प्रथम अनुसूची के सभी राज्य तथा राज्य-क्षेत्र आ जाते हैं, इसलिए यह बिल्कुल ठीक है। किन्तु जब हम इस संशोधन के दूसरे हिस्से पर आते हैं जहां राज्य में आवास का उल्लेख है तो वहां आकर कठिनाई पैदा होती है। आवास तो प्राधिकारी में हो नहीं सकता, वह तो किसी राज्यक्षेत्र में ही किया जा सकता

है और इसलिए अनुच्छेद 7 का हम सहारा नहीं ले सकते हैं, इसके लिए अनुच्छेद 1 का सहारा लेंगे और जब अनुच्छेद 1 को लेते हैं तो उसमें प्रथम अनुसूची का भाग 4 शामिल नहीं है। मेरा मन्तव्य इतना ही है।

***उपाध्यक्षः** इस प्रश्न पर वादानुवाद प्रारम्भ करने से पहले मैं एक विशेष बात सभा के सदस्यों के सामने रखना चाहता हूं। जिस खंड पर अब तक वादानुवाद हो रहा है वह हमारी आबादी के वर्ग विशेष पर खासतौर पर असर डालता है, अर्थात् उस वर्ग पर जिसके साथ अतीत में बड़ी निर्दयता के साथ व्यवहार किया गया है। आज हम अपने पूर्वजों के कुकृत्यों के लिए यद्यपि प्रायश्चित करने को तैयार हैं फिर भी यत्रतत्र अभी भी वही पुरानी कहानी चल रही है और विदेशों में इसका खूब बढ़ा-चढ़ा कर उल्लेख किया जाता है। जब भी हम किसी समस्या पर मानव-दृष्टि से, अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर ऊंचे स्तर पर उठ कर विचार करना चाहते हैं तो हमें यह ताना देकर चुप किया जाता है कि आप इस ऊंचे स्तर पर क्या विचार करेंगे? आप तो खुद अपने देशवासियों के एक वर्ग के प्रति भयानक अन्याय का बर्ताव करते हैं। इसलिए मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, अगर इस विशेष प्रश्न पर वादानुवाद के सम्बन्ध में सभा मुझे यह स्वतंत्रता दे दे कि मैं पिछड़े हुए बन्धुओं को पूर्णतः विचार व्यक्त करने की सुविधा दे सकूं। क्या यह अनुमति आप मुझे देते हैं?

***माननीय सदस्यगणः** अवश्य।

***उपाध्यक्षः** पहले मैं श्री गुरुंग को बोलने के लिए आमंत्रित करूंगा।

***श्री एच.वी. कामतः** इस अनुच्छेद पर वादानुवाद प्रारंभ करने से पहले क्या आप श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर के संशोधन के सम्बन्ध में किसी अन्तिम निर्णय पर न पहुंच जायेंगे? जिस कठिनाई का मैंने उल्लेख किया है उसके सम्बन्ध में संतोषजनक उत्तर अभी भी नहीं मिल सका है।

***उपाध्यक्षः** उसको बाद में लिया जायेगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मुझे एक जरूरी बात कहनी है जिस पर पहले विचार होना चाहिए। इससे वह चन्द कई खंड, जिसे हम स्वीकार कर चुके हैं, कट जाते हैं। इस संशोधन नं. 62 की तीसरी लाइन में ''any State'' शब्द आते हैं और हम इसके पहले ''the State'' स्वीकार कर चुके हैं।

***उपाध्यक्ष:** आपको और बोलने की इजाजत मैं नहीं दे सकता। हां, श्री गुरुंग, आप बोल सकते हैं।

***श्री अरिबहादुर गुरुंग** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे आपने जो बोलने का अवसर दिया, उसके लिए मैं कृतज्ञता प्रकाश करता हूं। इस अनुच्छेद के खंड (3) के प्रावधान को पढ़कर मुझे विशेषरूप से प्रसन्नता प्राप्त हुई है।

यह खंड कहता है:

''Nothing in this article shall prevent the State from making any provision for the reservation of appointments or posts in favour of any backward class of citizens who, in the opinion of the State, are not adequately represented in the services under the State.''

(इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को पिछड़े हुए किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधान राज्य की सम्मति में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों अथवा पदों के आरक्षण (reservation) के लिए प्रावधान करने में कोई अवरोध न होगा।)

यहां मैं यह मानता हूं, श्रीमान्, कि 'पिछड़े हुए वर्ग' के अन्दर तीन श्रेणियों के लोग आते हैं—एक तो परिगणित जातियां, दूसरे कबायली लोग और तीसरे वह विशेष वर्ग जिन्हें अब तक पिछड़े हुओं में शामिल नहीं माना गया है पर जो शिक्षा और अर्थ की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। यदि अनुमति हो तो, मैं तो यह कहूंगा कि यदि अधिक नहीं तो कम से कम भारत के 90 प्रतिशत लोग शिक्षा एवं अर्थ की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। मेरी समझ से 'पिछड़ा हुआ' (backward) शब्द का मतलब साफ नहीं है। मैं ऐसा समझता हूं कि भारतीय समुदाय के इस विशेष वर्ग के प्रति अर्थात् गुरखा-समाज के प्रति जो मेरा कर्त्तव्य है उससे मैं च्युत होऊंगा, अगर मैं उनके विचारों को यहां इस समय प्रतिध्वनित नहीं करता।

मैं सभा को बताऊंगा कि भारत में बसे हुए गुरखों की संख्या, अगर ज्यादा नहीं तो आज 30 लाख है। आर्थिक एवं शैक्षिक दृष्टि से वह पिछड़े हुए हैं। मैं ऐसा समझता हूं कि भारत में बसे गुरखों को वही सुविधायें मिलनी चाहिये जो यहां के अन्य पिछड़े हुए वर्गों को प्राप्त हैं। इस बात को सभी लोग जानते हैं, श्रीमान्, कि भारतीय स्वतंत्रता को बनाये रखने में गुरखों ने बहुत बड़ा काम किया है और हैदराबाद का युद्ध समाप्त कर आज यह काश्मीर के युद्ध में संलग्न हैं। भारतीय स्वतंत्रता की रक्षा में उनकी जो जिम्मेदारी थी उसका उन्होंने पालन किया है। मैं सभा को विश्वास दिलाता हूं कि भारत में बसा हुआ गुरखा समाज भारतीय सरकार के प्रति पूर्ण निष्ठा रखता है। बहुतों के मन में इस बात का गहरा सन्देह बना हुआ है कि यहां गुरखा समाज नेपाल सरकार के प्रति ही राजनिष्ठा रखता है। आज इस सभा-भवन में मैं आपको यह विश्वास दिलाता हूं कि भारत में बसा हुआ गुरखा-समाज भारतीय सरकार के प्रति ही राज-निष्ठा रखता है न कि नेपाल सरकार के प्रति। अपनी प्राप्त स्वतंत्रता की रक्षा के लिए हम अपने रक्त की अन्तिम बूंद तक बहाने में कभी न हिचकेंगे।

सन् 1947 की 15 अगस्त से गुरखा-समाज के प्रति यथेष्ट सद्भावना दिखाई गई है। अंग्रेजी राज में गुरखों को सेना में केवल वाइसराय कमीशन का ही दर्जा दिया जाता था, किन्तु अब 1948 से कई गुरखों को इमरजेंसी कमीशन का पद दिया गया है। और मुझे मालूम हुआ है कि कइयों को कर्नल का ओहदा भी दिया गया है। उनकी सेवाओं के स्वीकृतिस्वरूप ये जो ओहदे उन्हें दिये हैं यह हमारी सरकार की सद्भावना का द्योतक है।

राज्य की सम्मति में, राज्याधीन सेवाओं में जिन पिछड़े हुए जानपद वर्गों का प्रतिनिधान पर्याप्त नहीं है, उनके लिए अनुच्छेद 10 का यह खंड एक अनुकूल प्रावधान देता है। मैं समझता हूं कि अब इस व्यवस्था से शिक्षित गुरखे, जिन्हें कि अब तक सेना में ही काम करने का अवसर मिलता था, शासन-सम्बन्धी कामों में भी लिये जा सकेंगे। मुझे आशा है कि गुरखा-समाज जिसने कि सेना में रहकर अब तक अपने शौर्य का प्रदर्शन किया है अब शासन-सम्बन्धी नागरिक कार्यों में भी उसी प्रकार बुद्धि और चरित्रबल का प्रदर्शन करेगा।

इन शब्दों के साथ अपनी बात समाप्त करते हुए मैं पुनः आपको धन्यवाद देता हूं, श्रीमान्।

***श्री आर.एम. नलवदे** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 10 का जिस पर कि अभी विचार हो रहा है, पिछड़े हुए वर्ग की ओर से मैं समर्थन करता हूं और इसकी मुझे बड़ी खुशी है। इस अनुच्छेद में, और खासकर इसके खंड (3) में पिछड़े हुए वर्गों के लिए राज्याधीन सेवाओं में आरक्षण देने की व्यवस्था रखी गई है, किन्तु 'backward classes' (पिछड़े हुए वर्ग) जो शब्द यहां रखे गये हैं, उसका अर्थ बड़ा अस्पष्ट है और इनका ऐसा भाष्य भी किया जा सकता है कि इसके अन्दर ऐसे भी कई वर्ग आ जायें जो शैक्षिक दृष्टि से भी यथेष्ट समुन्नत हैं। पिछड़े हुए वर्ग की जो सूची है उसमें ऐसों का भी उल्लेख है। यहां इनके बदले अगर 'परिगणित जातियां' शब्द रखे गये होते तो दलित वर्ग के लिए राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधान पाना और आसान होता। प्रांतों में भी इस आरक्षण (रिज़र्वेशन) की व्यवस्था वर्तमान है पर वहां इस सम्बन्ध में हमारा बड़ा ही कटु अनुभव है। शिक्षित और हर प्रकार से पात्र होने पर भी प्रान्तीय सरकार के अधीन नौकरियों में दलित वर्ग को मौका नहीं दिया जाता है। अब जब कि स्वयं विधान में ही यह व्यवस्था लिपिबद्ध की जा रही है, तो अनुसूचित जातियों को कोई डर नहीं है। इस खंड के अनुसार केन्द्रीय तथा प्रान्तीय दोनों ही सेवाओं में हमें पर्याप्त प्रतिनिधान मिल सकेगा। इसलिए पिछड़े हुए वर्गों की ओर से मैं इस खंड का समर्थन करता हूं।

डा. धर्म प्रकाश (संयुक्तप्रांत : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस समय इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि बैकवर्ड क्लास की आज तक कोई भी परिभाषा नहीं हुई है और नहीं निकट भविष्य में इसकी कोई सम्भावना है। यों तो कोई भी समुदाय ऐसा नहीं है जिसमें कुछ न कुछ बैकवर्ड नहीं हैं। चाहे वह माली हालत में हों, चाहे तालीमी हालत में हों और चाहे सामाजिक हालत में हों, बैकवर्ड सब में हैं। परन्तु मेरा अपना विचार यह है कि यदि बैकवर्ड क्लास के लोगों के लिए सर्विसेज़ में कोई भी रिज़र्वेशन रखा जाता है तो यह देखना बहुत ही आवश्यक है कि जो समुदाय सदियों से पिछड़ा हुआ है, चाहे वह धार्मिक दृष्टिकोण से हो, चाहे आर्थिक दृष्टिकोण से और चाहे सामाजिक दृष्टिकोण से हो, उसकी वास्तव में वर्त्तमान परिस्थिति क्या है और भविष्य में उसका क्या बनने जा रहा है, यह देखना आवश्यक है। इस क्लाज में जो सबसे पहली आपत्ति उपस्थित होती है वह इस समय की अवस्था को ध्यान में रखकर भी एक बहुत बड़ा संकट उपस्थित

करने वाली नज़र आती है। आप सब महानुभाव यह जानते हैं कि आज हमारी इस राष्ट्रीय सरकार को विरासत में जो मशिनरी मिली है वह ऐसी है जिसकी मनोवृत्ति साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता और धार्मिक दृष्टिकोण से बहुत ही संकीर्ण रही है और आज भी इससे कोई इंकार नहीं कर सकता कि जब कभी सर्विसेज में कहीं कोई रिज़र्वेशन का प्रश्न आता है तो जहां जिस प्रान्त का बहुमत होता है और जो अधिकारी उस स्थान पर होता है वह सदा यही देखता है कि इससे मेरा सम्बन्ध क्या है। यदि उम्मीदवार उसके प्रान्त का है तो प्रान्त की दृष्टि से पक्षपात करता है और यदि वह उसकी जाति और उपजाति तथा श्रेणियों में विभक्त है तो उस दृष्टिकोण से पक्षपात करता है। उसे इस बात का ख्याल नहीं होता कि वह उसकी योग्यता पर ध्यान दे, बल्कि इस बात का विचार करता है कि इससे मेरा कोई स्वार्थ साधन होता है या नहीं, और इसलिए वह सर्विसेज़ में ऐसे ही लोगों को प्रोत्साहन देता है। तो जो मशिनरी आज पिछले सांचे में ढली हुई है और बहुत बड़ा प्रयत्न करने पर भी इस रफ्तार से चल रही है उससे यह सम्भावना नहीं है कि वह निष्पक्ष होकर किसी को सर्विसेज़ में स्थान दे। यह बहुत बड़ा खतरा है और इसको दूर करने के विचार से मैं यह समझता हूं कि यदि परिभाषा करके यह निष्पक्ष रूप से साफ कर दिया जाये कि कौन पिछड़े हुए हैं तो शायद यह आपत्ति हट जाये। आज देश का वातावरण ऐसा है कि सर्विसेज़ तो क्या हमें लेजिस्लेचर तक के लिये लाचार होकर रिज़र्वेशन की मांग हरिजनों के लिए करनी पड़ती है। अन्यथा मैं तो इस बात के पक्ष में हूं कि ऐसे देश में जो स्वतंत्र हो चुका है और जिसका विधान स्वतंत्र रूप से बनाया जा रहा है, वास्तव में रिज़र्वेशन की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन सबसे बड़ी आपत्ति जो देखने में आती है और जिसके कारण लाचार होकर रिज़र्वेशन मांगा जाता है वह यह है कि आज भी दुर्भाग्य से यह देखने में आता है कि वह उदारता व निष्पक्षता का भाव जो समाज में होना चाहिए वह अभी नहीं है और मैं नहीं समझता कि वह बहुत शीघ्र आने वाला भी है। इसलिए मैं आपके सामने यह सुझाव रखता हूं कि आप बैकवर्ड शब्द न रखकर, जैसा कि संशोधन है, उसके अनुसार डिप्रेस्ड क्लास या शिड्यूल्ड क्लास रखें, जो ज्यादा उपयुक्त हो सकता है क्योंकि उसकी परिभाषा हो चुकी है। इसमें बहुत सी वह श्रेणियां सम्मिलित की जा चुकी हैं कि जिन्हें वास्तव में सभी लोगों ने यह मान लिया है कि वह बहुत पिछड़ी हुई हैं।

[डा. धर्म प्रकाश]

इसलिए मैं इस संशोधन का उस रूप में समर्थन करता हूं कि 'बैकवर्ड' शब्द हटा कर 'शेड्यूल्ड कास्ट' शब्द रहे। मैं समझता हूं कि उनके लिए सर्विसेज में भी कुछ समय के लिए यह रिज़र्वेशन आवश्यक है वरना मैं तो इसके पक्ष में भी नहीं हूं कि लेजिस्लेचर में भी कोई रिज़र्वेशन रखा जाये। और आगे चल कर यह रिज़र्वेशन बन्द कर दिया जाये। मेरा तो अपना मत यह है कि आज इस स्वतंत्र देश में हिन्दुओं के नाम पर, मुसलमानों के नाम पर, ईसाइयों और सिक्खों के नाम पर रिज़र्वेशन करना और यह जाहिर करना कि यह बहुत ही अल्पसंख्यक हैं, यह तो कुछ उचित सी बात नहीं मालूम पड़ती। लेकिन हिन्दुओं के उस समुदाय को, जो हरिजन कहलाता है और जो कि वास्तव में पिछड़ा हुआ है, कुछ समय के लिए रिज़र्वेशन देना उपयुक्त मालूम पड़ता है। वह भी कुछ समय के ही लिए होना चाहिए और जब वह समानता प्राप्त कर लें तो मैं सबसे पहला शख्स होऊंगा जो इस बात का विरोध करेगा कि उनके लिए किसी प्रकार का रिज़र्वेशन नहीं होना चाहिए। लेकिन जब तक यह परिस्थिति नहीं आती मैं इसके हक में हूं। इसलिए मैं कहता हूं कि कुछ ऐसा शब्द जोड़कर अभी सर्विसेज़ में रिज़र्वेशन करना उपयोगी होगा न कि हानिकारक।

श्री चन्द्रिका राम (बिहार : जनरल): जनाब सदर साहब, मैं इसलिये यहां आया हूं कि आर्टिकिल 10 का समर्थन करूं। बहुत से अमेंडमेंट हम लोगों के सामने आये हैं जिनमें यह कहा गया है कि ''बैकवर्ड क्लासेज़'' के स्थान पर 'शिड्यूल्ड कास्ट' जोड़ दिया जाये। मैं इसके पक्ष में हूं। आप सदस्यों को मालूम होगा कि एडवाइज़री कमेटी में जब यह सवाल आया था कि डिप्रेस्ड क्लासेज़ और शिड्यूल्ड कास्ट्स के लिए रिज़र्वेशन हो, तो उस समय केवल एक वोट से हार गया, नहीं तो आज कानूनी तौर से हरिजनों के लिए यह बात रहती कि उनके लिए सर्विसेज़ में रिज़र्वेशन हो। खैर, अब यहां पर बहुत सी बातें हो रही हैं कि 'बैकवर्ड क्लास' क्यों रखा गया है और 'बैकवर्ड क्लास' डिफाइन नहीं किया गया है। जिन भाइयों ने या जिन सदस्यों ने सेन्सस रिपोर्ट, खासकर सन् 21 और 31 की देखी होगी, उनको मालूम होगा कि वहां बैकवर्ड क्लास का डैफीनीशन एक तरह से दिया गया है। मेरे जानते, समाज आज तीन भागों में

विभाजित है जैसा कि इन रिपोर्टों से पता चलता है। पहले भाग में हिन्दू समाज के वह लोग है जिनको हम सवर्ण कहते हैं, आखिरी में वह लोग हैं, जिनको डिप्रेस्ड क्लासेज, अनटचेबिल्स, शेड्यूल्ड कास्ट या हरिजन कहते हैं। लेकिन इस देश का एक बहुत बड़ा हिस्सा वह है जो इन दोनों के बीच में है जिसको बैकवर्ड क्लास कहा गया है। मुझे अफसोस है कि उस बैकवर्ड क्लास को जिसके लिये हमारे माननीय पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने कहा है, लेजिस्लेचर में, असेम्बली में और कौंसिल में रिज़र्वेशन नहीं किया गया है। मैं आपको केवल नमूने के लिये बिहार की बात बतला दूं कि वहां इस 'बैकवर्ड क्लास' में जिसको कि सेन्सस में कहा गया है कि बिहार की सबसे बड़ी पापूलेशन है, उनके अगर, असेम्बली और कौंसिलों के representation को देखें, उनके प्रतिनिधित्व को देखें, तो आपको पता चलेगा कि वह वहां पर नहीं है, सिवाय एक community को छोड़कर जिसको कि हम Ahir community कहते हैं। अगर देखा जाये तो आज उनकी संख्या 50 लाख के करीब है और असेम्बली और कौंसिल के उनके representation को अगर देखा जाये तो उनकी संख्या उसमें दो के बराबर है, जहां 152 आदमी असेम्बली में और 30 आदमी कौंसिल में हैं। इस तरह यह बात नहीं है कि समाज में, उनके बीच में या और लोगों के बीच में अछूत नहीं हैं। सिर्फ यही बात नहीं है कि शिक्षा में और आर्थिक हालतों में और लोगों से वह बहुत आगे हैं। लेकिन किसी समाज को उन्नत बनाने के लिये, किसी समाज को तरक्की में लाने के लिये यह जरूरी है कि उसके पोलिटिकल राइट्स रहें। अगर किसी समाज में चाहे कितने भी थोड़े आदमी हों, चाहे उनकी हालत कितनी ही अच्छी हो, अगर उनके पोलिटिकल राइट्स नहीं हैं, अगर राजनैतिक तरीके से असेम्बली और कौंसिलों में इनका हक नहीं है, तो मैं नहीं समझता कि वह कभी भी स्टेट में और लोगों के बराबर आ सकते हैं। इसलिये मैं तो समझता था कि जहां पर हरिजनों को आपने रिज़र्वेशन दिया है सर्विसेज में, असेम्बली और कौंसिलों में वहां पर यह जरूरी था कि बैकवर्ड क्लास के लोगों को आप असेम्बली में रिज़र्वेशन देते जिसका थोड़ा दर्द अभी पहले अपने आरग्यूमेंट में माननीय हृदयनाथ कुंजरू ने जाहिर किया है। बैकवर्ड क्लास हरिजन चूंकि बैकवर्ड क्लास हैं इसलिये हम उनको इतनी सुविधाएं देते हैं तो क्यों न वह आरग्यूमेंट उन पर लागू किया जाये और उन लोगों को वही सुविधायें, रिज़र्वेशन, लेजिस्लेचर में क्यों न दी जायें? यह जरूरी बात थी। हम इस देश का विधान बना रहे हैं, जिसमें हम समझते हैं और शुरू-शुरू में हमने यह कहा है कि हमको सबके लिये जस्टिस करनी है और वह जस्टिस सोशल, इकनामिक और पोलिटिकल है, तो मैं समझता हूं कि देश का एक बहुत

[श्री चन्द्रिका राम]

बड़ा तबका जिसकी संख्या मैं समझता हूं सबसे अधिक है, उनको हम पोलिटिकल राइट्स ही दे रहे हैं। इसलिये यह जहां पर हम बातें करते हैं equal opportunity देते हैं, लेकिन असल में हम उनको अलग कर रहे हैं। इसलिये अगर यह ख्याल था कि यहां पर आर्टिकल दस में सिर्फ सर्विसेज़ में ही नहीं बल्कि उनको लेजिस्लेचर में भी रिज़र्वेशन होना चाहिये। अब रहा बहुत से सदस्यों का यह objection कि backward class का word नहीं रहना चाहिये और उसको हटा देना चाहिये। खासकर हमारे सोशलिस्ट भाई श्री दामोदरस्वरूप सेठजी और श्री लोकनाथ मिश्र जी का यह amendment है कि उस backward class के word को हटा देना चाहिये। इसके बाबत पहली बात तो यह कहनी है कि सेठजी सोशलिस्ट पार्टी के मेम्बर हैं और मैं उम्मीद करता हूं और सब इस बात को जानते हैं कि सोशलिस्ट पार्टी तो सबसे आगे रहेगी, इस देश के हर एक लोगों का प्रतिनिधित्व करने में। तो मैं नहीं समझता कि यह क्यों objection उनका हो रहा है जबकि समाज में उन लोगों के लिये एक क्लाज रखा गया है। जो लोग ऐसा समझते हैं कि इस देश में कोई backward नहीं है, उनके लिये मैं इतना ही कहूंगा कि वे देश के इतिहास को, समाज की प्रगति को और आज की हालतों को आंख मूंद कर देख रहे हैं, आंख खोल कर नहीं देख रहे हैं। इसलिये भी जो यत्न Drafting Committee ने किया है, वह अच्छा किया है और जैसे यह amendment मेरे सामने है, मैं उसकी ताईद करता हूं।

***श्री पी. कक्कन** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 10 का समर्थन करते हुए मुझे बड़ी खुशी हो रही है। अब तक गरीब हरिजन भाइयों को सरकारी नौकरियों में उचित संख्या में नियुक्तियां नहीं मिला करती थी। उच्च पदस्थ अधिकारी केवल अपने ही आदमियों को रखते थे, हरिजनों को नहीं। तरक्की के सम्बन्ध में भी हमारे साथ न्याय नहीं किया जाता था। आवश्यक पात्रता तथा व्यक्तित्व की आशा तो हरिजनों से सरकार कर सकती है पर योग्यता की आशा उनसे अभी आप नहीं कर सकते। अगर केवल योग्यता को ही ध्यान में रखते हुए नियुक्तियां की जायेंगी तो हरिजन अभी नहीं आ सकेंगे। मैं इस सभा के समक्ष यह कहना चाहता हूं कि अभी कुछ वर्गों तक हरिजनों को नियुक्ति-विषयक आरक्षण देने के लिए सरकार को खासतौर पर कार्रवाई करनी होगी। सरकार से मैं यह आशा करता

हूं कि पुलिस और सेना में भी हरिजनों को और अधिक स्थान देने के लिए वह आवश्यक कार्रवाई करेगी। उदाहरण के लिए मैं कहूंगा कि कश्मीर में हरिजन आज बड़े जोश से युद्ध कर रहे हैं। मैं इस सभा में यह जरूर कहूंगा कि शासन मे हरिजनों को और अधिक काम मिलने चाहिए और सरकार द्वारा उन्हें प्रोत्साहन मिलना चाहिए। इन शब्दों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूं।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्लेः** उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 10 के प्रथम दो खंडों में यह स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दिया गया है कि नौकरियों के सम्बन्ध में सभी नागरिकों को आम अधिकार प्राप्त रहेंगे। किन्तु जब हम खंड (3) पर आते हैं तो हमें एक कठिनाई होती है जैसा कि एक बन्धु ने अभी यहां बताया है। वह कठिनाई यह है 'backward' शब्द यहां रखा गया है पर इसकी समुचित व्याख्या कहीं नहीं दी गई है। अतः इससे मुझे यह भ्रम पैदा होता है कि जिन सम्प्रदायों को शासन-सम्बन्धी कार्यों से शुरू से ही अलग रखा गया उन्हें इससे उनका समुचित भाग मिल सकेगा। अब जब देश में इतना बड़ा उथल-पुथल हो रहा है और उसका विधान बन रहा है तो मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि उन सम्प्रदायों को, जिनको कि सरकारी नौकरियों के हलुए मांड़े से सदा वंचित रखा गया, अब इससे वंचित न रखना चाहिए। इसी अभिप्राय से मैंने एक संशोधन की सूचना दी है और 50 सदस्यों के हस्ताक्षर से एक और संशोधन भी आया है, पर मैं अपना संशोधन पेश नहीं कर सका जिसका कारण आप अच्छी तरह जानते हैं। किन्तु मैं इस बात को स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जब तक कि इस आशय का आश्वासन नहीं मिलता कि इन सम्प्रदायों को—मेरा मतलब खास तौर से परिगणित जातियों से है—इस खंड द्वारा सरकारी नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधान मिलेगा। जब तक यह आश्वासन नहीं मिलता कि इन सम्प्रदायों का सभी मौकों पर पूरा ख्याल किया जायेगा और इनको सरकारी नियुक्तियों में काफी अवसर दिया जायेगा, तब तक इनका उत्थान यों ही रुका रह जायेगा। अभी उस दिन माननीय उप-प्रधान मंत्री सरदार पटेल ने यह साफ-साफ कहा है कि हरिजनों के प्रति न केवल न्याय ही किया जायेगा बल्कि उनके सम्बन्ध में उदारता भी बरती जायेगी। मैं अनुरोध करूंगा कि उसी दृष्टिकोण और भावना से अनुप्राणित होकर सभा को यहां इस बात का स्पष्ट आभास दे देना चाहिए कि परिगणित जातियों के हितों की सदा रक्षा की जायेगी। कई सदस्यों का यह ख्याल है कि आरक्षण सम्बन्धी व्यवस्था की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैं समझता हूं कि यह गलत ख्याल है क्योंकि

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

जब तक हमारे राजनैतिक समुदाय में साम्प्रदायिकता का विष वर्तमान है ऐसे सम्प्रदाय जरूर रहेंगे जो आरक्षण की मांग करेंगे। किन्तु इस सम्बन्ध में हरिजनों की वकालत साम्प्रदायिकता के आधार पर नहीं की जा रही है बल्कि इस कारण से कि कई वर्षों तक, कई दशाब्दियों तक सामाजिक, आर्थिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी समुन्नति के अभाव में इन्हें नौकरियों से बाहर रखा गया और अब इन्हें वहां स्थान देना जरूरी है। मैं यह भी अनुभव करता हूं कि यहां सभा में हरिजनों के पक्ष का दृढ़तापूर्वक प्रतिपादन होना चाहिए जिससे कि सदा उनको न्याय मिल सके। साथ ही मैं सभा को यह भी बता दूं कि हरिजन समाज के किसी भी नेता का यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि इस देश में साम्प्रदायिकता का भूत सदा के लिए बना रहे; किन्तु जब तक नौकरियों में प्रवेश पाना उनके लिये कठिन है, उनको कुछ न कुछ संरक्षण मिलना नितान्त आवश्यक है। नौकरियों में इनका अपर्याप्त-प्रतिनिधान देखकर सरकार ने पहले इसके लिए प्रावधान कर दिया था। हमारे ही प्रान्त में मद्रास सरकार ने इसके सम्बन्ध में सरकारी आज्ञा भी जारी की है और उसके जरिये हरिजनों को मौके दिये हैं। इसके अलावा हरिजनों में से जो लोग नौकरियों के लिए चुने गये थे उन्होंने अपनी सार्थकता भी सिद्ध की है। अगर आपकी अनुमति हो तो, श्रीमान्, मैं कहूंगा कि सेना में भी इन्होंने अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी है और अभी कश्मीर युद्ध में दक्षतापूर्वक अपना कार्य सम्पन्न किया है। मसौदा-समिति के प्रधान भी हरिजन है और इसी से हरिजन सम्प्रदाय की योग्यता का पता चल जाता है।

***श्री टी. चान्निया** (मैसूर): उपाध्यक्ष महोदय अनुच्छेद 10(3) में 'backward' शब्द रखने से मद्रास से आये हुए सदस्यों के मन में कुछ संदेह उत्पन्न हो गया है। अवश्य ही यह सच है कि मसौदे में कहीं भी 'backward' शब्द की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी गई है। उत्तरी भारत से आये हुए हमारे माननीय बन्धुओं को यह देखकर बड़ी हैरत हो रही है कि दक्षिण भारत के सदस्यों का 'backward' शब्द के सम्बन्ध में इतना आग्रह है। उत्तर भारत में हिन्दू और मुसलमानों में एक स्पष्ट भेद है और इसे उत्तरी भारत के सदस्य अच्छी तरह जानते हैं। उन्हें यह भी मालूम है कि हिन्दुओं में कई वर्ग हैं जो खेती का काम करते हैं और कई वर्ग हैं जो कारीगरी के काम करते हैं ये सभी पिछड़े हुए (backward) वर्ग में आते हैं। दक्षिणी भारत में ''पिछड़े हुए वर्ग'' का एक खास अर्थ है। दक्षिण भारत

में, जैसा कि मैं जानता हूं, 'पिछड़े हुए' वही समझे जाते हैं जो सामाजिक दृष्टि से या शिक्षा की दृष्टि से अनुन्नत हैं। एक मात्र वर्ग जो अनुच्छेद 10(3) के अन्दर वहां नहीं शामिल किया जा सकता है, वह है उन लोगों का वर्ग जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है।

वे ऐसा समझते हैं कि 'backward' शब्द के यहां रहने से उनके हित में बाधा पड़ेगी यानी सरकारी नौकरियों में वे न लिये जा सकेंगे। दक्षिण भारत में 'backward' शब्द से वही लोग समझे जाते हैं जो शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं और उन्हीं लोगों को नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधान देना जरूरी है। एक दूसरा वर्ग भी जो सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है और उसे भी नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधान मिलना चाहिए। जो लोग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं उनको खंड 10(3) में जो 'backward' शब्द रखा गया है उससे कोई दिलचस्पी नहीं है।

इसका स्पष्ट चित्र सामने रखने के लिये मैं यह बताता हूं कि मैसूर में इस सम्बन्ध में क्या होता है। वहां नौकरियों को दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है ए क्लास और बी क्लास। ए क्लास की जगहों के लिए ब्राह्मण तथा अब्राह्मण दोनों ही आवेदन करने के अधिकारी हैं पर बी क्लास की जगहों के लिए केवल पिछड़े हुए वर्ग को आवेदन करने का हक है। पिछड़े हुए वर्गों के लोग दो प्रकार की अयोग्यताओं के शिकार हैं। सामाजिक अयोग्यतायें एवं शिक्षा सम्बन्धी अयोग्यतायें दोनों ही उनमें वर्तमान हैं। इन दोनों अयोग्यताओं को ध्यान में रख कर ही रियासत की सरकार ने बी श्रेणी की जगहों के लिए पिछड़े हुए वर्ग को रखने की विशेषतौर पर व्यवस्था की हैं इसलिए यह उचित है, श्रीमान्, कि 'backward' शब्द जो अनुच्छेद 10(3) में आया है वह रखा जाये। जैसा कि माननीय डा. अम्बेडकर ने बताया है, 'backward' शब्द इस कारण रखना भी आवश्यक है कि अगर अनुच्छेद 10 के खंड (3) में यह रखा जाता है तो अनुच्छेद 10 के खंड (1) और (2) दोनों ही व्यर्थ हो जायेंगे।

***उपाध्यक्षः** खेद के साथ कहना पड़ता है कि और भी सदस्य बोलने वाले हैं।

***श्री टी. चान्नियाः** वस्तुतः मुझे खेद है कि माननीय पं. कुंजरू यह समझते हैं कि पिछड़े हुए वर्ग को केवल 10 वर्षों के लिए यह आरक्षण मिलना चाहिए।

[श्री टी चान्निया]

मैं तो कहूंगा श्रीमान्, कि 150 वर्षों के लिए आरक्षण मिलना चाहिए, क्योंकि उतने ही काल तक पिछड़े हुए वर्गों को इस अधिकार से वंचित रखा गया है।

***उपाध्यक्षः** श्री चान्निया, क्या कृपा कर अब आप अपनी जगह लेंगे?

श्री सान्तनु कुमार दास (उड़ीसा : जनरल): सभापति महोदय, बैकवर्ड क्लास पर जो बहस हो रही है, इसके बारे मैं कुछ नहीं कहना चाहता हूं। हमारे देश में विदेशी हुकूमत से बुरा असर पड़ा है। इसलिये हम साहस नहीं कर सकते हैं कि यह रिज़र्वेशन कांस्टीट्यूशन में से अभी दूर कर दें। और जब तक यह परिस्थिति रहेगी, तब तक हम हरिजनों में या शिड्यूल्ड कास्ट जो बैकवर्ड क्लास में आ जाते हैं रिज़र्वेशन एम्प्लायमेंट में डिमांड करते रहेंगे। हम देखते रहेंगे कि उसमें कितने हरिजन कितने मुसलमान, क्रिश्चियन हैं। आज कल माइनारिटी लोगों में यह डर रहता है कि रिज़र्वेशन के रहने पर एलेक्शन में और सर्विसेज़ में यह स्थान नहीं पायेंगे। आप देखते हैं कि रेलवे डिपार्टमेंट में कितनी वैकैंसी हैं। इसके लिए आप ऐडवाइस करते हैं हम लोग एक-एक परचा पा जाते हैं हमारे कैन्डिडेट्स कितनी दूर-दूर से अपने एक्सपेंस पर इन्टरव्यू के लिए जाते हैं, मगर कोई उनको नहीं पूछता है। और जो आगे से करते हैं, वह इसमें घुस जाते हैं। क्योंकि डिपार्टमेंटों में उनकी स्ट्रांग बैकिंग होती हैं। आपके एडवर्टिज़मेंट से हम क्या फायदा पाते हैं? लेकिन समय आने पर हमको कोई नहीं पूछता है। फिर आखिर आप एडवर्टाइज़ क्यों करते हैं? क्या सिर्फ पंडित जी और सरदार जी को संतुष्ट करने के लिए?

***उपाध्यक्षः** आप तो मूल बात से बहक गये।

श्री सान्तनु कुमार दासः इसमें शेड्यूल्ड कास्ट्स और माइनारिटी वाले गजेटेड आफिसर भी मुसीबत में पड़ते हैं। अभी पब्लिक सर्विस कमीशन के बारे में दामोदरस्वरूप सेठ जी ने कहा कि पब्लिक सर्विस कमीशन है तो रिज़र्वेशन की कुछ जरूरत नहीं है। मैं बतलाऊंगा कि पब्लिक सर्विस कमीशन है, कैन्डिडेट्स आते हैं, इम्तिहान देते हैं, जो फर्स्ट होकर रह जाते हैं, उनका नाम भी लिस्ट में आ जाता है। मगर जब काम में जाने का वक्त आता है, तब जो इम्तिहान नहीं देते हैं, वह लोग आकर काम में घुस जाते हैं। यह कैसे होता है? स्ट्रोंग बैकिंग रहती है यह काम खत्म कर देते हैं। मुझे डर है कि पब्लिक सर्विस

कमीशन रहने से कुछ फायदा नहीं होगा। अब रिज़र्वेशन एलेक्शन में होता है। इसलिए हम यहां आकर हमारे सवाल पर बहस कर सकते हैं। जब रिज़र्वेशन एलेक्शन में नहीं रहता तो हम यहां नहीं आ सकते क्योंकि जनरल एलेक्शन में हम नहीं मिल सकते हैं। अभी तो हम यहां आकर माइनोरिटी के सवाल पर बहस नहीं देखा करते थे। मैं इसलिए कहता हूं कि रिज़र्वेशन इन सर्विसेज़ एण्ड एलेक्शन्स रहना चाहिए।

और एक बात है। रिज़र्वेशन दस वर्ष के लिए रहता है। दस वर्ष क्यों? जब दो वर्ष में हम समान अधिकार पा जाते हैं तो दो वर्ष में सब एक हो सकता है। फिर रिज़र्वेशन की जरुरत नहीं होगी।

मैं इतना कह कर इसका समर्थन करता हूं।

***श्री जसपतराय कपूर:** मैं आपसे यह निवेदन करूंगा श्रीमान्, कि हम में से बहुत से सदस्य यह नहीं पसन्द करते कि मार्शल वक्ता के पास जाकर उसे बैठने के लिये कहें।

***उपाध्यक्ष:** मार्शल ने जो कुछ किया है उसके लिये मुझे खेद है पर उन्होंने मेरे आदेश पर ऐसा नहीं किया है। वह खुद ही आवश्यकता है अधिक उत्साही हैं।

***श्री एच.जे. खांडेकर** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): आपने समय की पाबन्दी का जो उल्लेख किया है उसके सम्बन्ध में एक निवेदन करना चाहता हूं। वक्ताओं में अधिकतर हरिजन बन्धु ही हैं और स्थिति पर प्रकाश डालने में उन्हें कुछ समय जरूर लगेगा। इसलिये मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि समय कुछ बढ़ा दें ताकि वे अनुच्छेद पर रोशनी डाल सकें और उसका अच्छी तरह समर्थन कर सकें।

***उपाध्यक्ष:** हां।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं अनुच्छेद 10 का समर्थन करने के लिये यहां खड़ा हुआ हूं जिस पर सभा में अभी विचार किया जा रहा है। इसका समर्थन करने से पहले मैं मसौदा-समिति के उस मित्र को धन्यवाद देता हूं जिन्होंने अनुच्छेद 10(3) में 'backward' शब्द को रखा। अगर यह शब्द यहां न होता तो परिगणित जातियों का प्रयोजन उतना सिद्ध न होता जितना कि होना चाहिए। इनकी अवस्था का ज्ञान यहां मेरे कई मित्रों ने कराया है जिन्होंने यहां

[श्री एच.जे. खांडेकर]

वक्तृतायें दी हैं। उनकी अवस्था बड़ी ही दयनीय है। इनके उम्मीदवार जब किसी सरकारी नौकरी के लिए दरख्वास्त देते हैं तो वह चुने ही नहीं जाते क्योंकि उम्मीदवारों को जो लोग चुनते हैं वह हरिजन सम्प्रदाय के नहीं होते। इस सम्बन्ध में मैं बहुत से उदाहरण पेश कर सकता हूं क्योंकि देश के प्रायः सभी प्रान्तों का मुझे अनुभव है। समुचित योग्यता होने पर भी हरिजन उम्मीदवार को नौकरियों में मौका नहीं दिया जाता और उनके साथ न्याय का बर्ताव भी नहीं किया जाता है। अच्छा होता कि यहां 'Scheduled Castes'' शब्द यहां रखा जाता जैसा कि मेरे मित्र श्री मुनिस्वामी पिल्ले ने संशोधन रखा था। 'Backward' शब्द बड़ा ही अस्पष्ट है और फिर इसकी कहीं परिभाषा भी नहीं दी गई है। मैं अपने मित्र श्री चन्द्रिका राम के इस कथन से सहमत नहीं हूं कि जनगणना सम्बन्धी रिपोर्ट में इस शब्द की परिभाषा दी गई है। वहां 'Scheduled Castes' की परिभाषा दी गई है और इसमें आने वाली जातियों की एक तालिका शामिल कर दी गई है। किन्तु मैं समझता हूं कि ''backward'' शब्द रखने वाले मित्र का अभिप्राय है उस सम्प्रदाय से जो परिगणित जाति के नाम से ज्ञात है। विधान के पास हो जाने पर जब यह खंड अमल में आयेगा, आशा है उस समय अधिशासी वर्ग, जो इस खंड को अथवा इस विधान को कार्यान्वित करेगा, वह भी इस backward शब्द से परिगणित जातियों को ही लेगा। हमारे श्रद्धेय नेता श्री ठक्करबापा यहां सभा में उपस्थित हैं। हरिजन सेवक संघ के प्रधानमंत्री के रूप में वह आज प्रायः 16 वर्षों से इस समाज के लिए कार्य करते आ रहे हैं। वह जानते हैं कि इस समाज की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी क्या-क्या कठिनाइयां हैं। इन सभी बातों को अलग रखकर अगर आप केवल राजनैतिक दृष्टि से ही देखें तो पता चलेगा कि अगर स्थान सम्बन्धी आरक्षण न हो तो उस समाज को कहीं भी कोई प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त होता है।

***उपाध्यक्षः** अच्छा हो अगर इस अनुच्छेद तक ही अपनी बातें सीमित रखें। इसमें राजनीति की चर्चा कैसे आ सकती है?

***श्री एच.जे. खांडेकरः** इस सम्प्रदाय की राजनैतिक अवस्थिति की चर्चा न भी करें और केवल इसकी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं धार्मिक स्थिति को ही लें तो इन सभी बातों में भी इस समाज की अवस्था देश के अन्य किसी भी वर्ग से अधिक सोचनीय है। मैं तो कहूंगा, श्रीमान्, कि परिगणित जाति का

उम्मीदवार जब भारत सरकार अथवा प्रान्तीय सरकारों की किसी जगह के लिए आवेदन करता हैं तो साधारणतया उसके आवेदन की उपेक्षा ही की जाती है। उम्मीदवारों की भरती के लिए कई कमीशन हैं। इसके लिए फैडरल पब्लिक सर्विस कमीशन है और प्रान्तीय कमीशन भी हैं। आप तो जानते ही हैं, श्रीमान्, कि शिक्षा में हम पिछड़े हुए हैं और अन्य सम्प्रदायों के मुकाबले में हम आ नहीं सकते। अगर भरती करने में हरिजन उम्मीदवारों को योग्यता के सम्बन्ध में कुछ छूट नहीं दी जाती है, वह ब्राह्मण समाज या सवर्ण हिन्दू समाज के उम्मीदवारों के मुकाबले में आ नहीं सकते। अब अगर हमारे उम्मीदवार फैडरल पब्लिक सर्विस कमीशन या प्रान्तीय कमीशनों के सामने जाते हैं तो उन्हें कभी सफलता नहीं मिल सकती क्योंकि इन कमीशनों में हमारे प्रतिनिधि हैं ही नहीं। इसलिये मैं समझता हूं कि फैडरल पब्लिक सर्विस कमीशन या प्रान्तीय कमीशनों को यह आदेश मिलना चाहिए कि इस अनुच्छेद पर अमल करने में वह हरिजन उम्मीदवारों या परिगणित जाति के उम्मीदवारों के सम्बन्ध में योग्यता की कुछ छूट दें और साथ ही इन कमीशनों में हमारे भी प्रतिनिधि रहने चाहियें। इसके अतिरिक्त मैं जानता हूं और यह सभा भी जानती है और आप भी जानते हैं कि भारत सरकार ने—मेरा मतलब है वर्तमान भारत सरकार से—नौकरियों के सम्बन्ध में परिगणित जातियों की बाबत एक सरकुलर भी जारी किया है। उसमें उन्होंने कहा है कि ऊंची नौकरियों में 12।। प्रतिशत जगहें हरिजनों के लिए सुरक्षित हैं और नीचे की नौकरियों में उसके लिये 16।। प्रतिशत जगहें सुरक्षित हैं।

किंतु अगर आप यह देखें श्रीमान्, कि इनकी भरती वस्तुतः कैसे हो रही है आपको पता चलेगा कि ऊंची नौकरियों में हमारे एक प्रतिशत भी उम्मीदवार नहीं रखे जाते और यही बात निम्न श्रेणी की नौकरियों में भी है। हमारी प्रान्तीय सरकारों को ही देखिए, जिनका संचालन आज हमारी जनता द्वारा चुने हुए मंत्री कर रहे हैं। इन प्रान्तों में भी हरिजनों को नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधान प्राप्त नहीं है। इसलिए मुझे बड़ी खुशी होती अगर 'backward' शब्द के बाद ''शेड्यूल्ड कास्ट्स'' शब्द भी यहां रख दिए जाते क्योंकि 'backward' शब्द बड़ा अस्पष्ट है और जगहों की भरती में साम्प्रदायिकता की भावना जरूर आयेगी और कमीशन वहां कुछ न कर सकेगा। जैसा कि कई मित्रों ने यहां बताया है, साम्प्रदायिकता की भावना तथा प्रांतीयता का भाव सर्वत्र जोरों पर है और इसी प्रकार की अन्य कई अबोधनीय

[श्री एच.के. खांडेकर]

बातें हो रही हैं और अगर यह सब बातें यों ही चलती रही तो मुझे डर है कि इस खंड के अमल में आने पर भी परिगणित जातियों को नौकरियों में कभी मौका नहीं मिलेगा क्योंकि 'backward' शब्द का इस प्रकार भाष्य किया जायेगा कि हमें नौकरी पाने की कोई गुंजाइश न रहेगी और दूसरी जातियों के लोग अपने को पिछड़ा हुआ बता कर उन जगहों को ले लेंगे जो हमारे लिए सुरक्षित रखी गई हैं। इसलिए अपनी बात समाप्त करने से पहले मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि जो भी निकाय इस अनुच्छेद को अमल में लाये, वह इतना शुद्ध हृदय हो कि परिगणित जातियों में तथा पिछड़े हुए लोगों की श्रेणी में आने वाले लोगों में कोई भेद-भाव न बरते। इन शब्दों के साथ मैं अपना स्थान ग्रहण करता हूं।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 10 के खंड (3) में जिस प्रसंग में 'backward' शब्द रखा गया है उसमें उसका मतलब मैं नहीं समझ पाता हूं। मगर बिना इस शब्द के खंड को पढ़ा जाये तो उसका अर्थ साफ-साफ समझ में आ जाता है। किन्तु यह शब्द रख देने से अर्थ में बड़ी अस्पष्टता आ जाती है। विधान में कहीं भी 'backward' की परिभाषा नहीं दी गई है। किन्तु मैं आपको बताऊं कि कई जगहों में इसकी परिभाषा की गई है। मद्रास में इसका एक खास अर्थ है। वहां कई ऐसी जातियां और उपजातियां हैं जो 'backward' सम्प्रदाय में गणना की जाती है। मद्रास की सरकार ने 150 से अधिक जातियों को वहां 'backward' लोगों में रखा है और उस प्रान्त में 'backward' शब्द से वही 150 जातियों के लोग लिए जाते हैं और अन्य कोई भी सम्प्रदाय नहीं लिया जाता जो आमतौर पर पिछड़ा हुआ है। और मैं यह भी कह दूं कि यह जो 150 या इससे कुछ अधिक जातियां हैं उन्हीं की वहां की आबादी में अधिक संख्या है और वहां के बहुसंख्यक हिन्दू सम्प्रदाय के ही, यह जातियां अंग हैं। 'Backward' लोगों की सूची में वहां परिगणित जातियां नहीं रखी गई हैं और अगर इन्हें भी उसमें शामिल कर दिया जाये तो उन सबको मिला कर प्रान्त की आबादी में वही बहुसंख्यक होंगे। मैं यह जानना चाहता हूं कि यहां 'backward' शब्द से उन्हीं पिछड़ी हुई जातियों को लेते हैं जिनको मद्रास सरकार ने अपने यहां 'backward' माना है। मैं यहां इस शब्द का अर्थ जानना चाहता हूं। मेरा कहना है कि इसका यह अर्थ नहीं होना चाहिए कि मुसलमान और ईसाई

जैसे अल्पसंख्यक सम्प्रदाय का पिछड़ा हुआ वर्ग तथा परिगणित जातियां इस खंड के दायरे के बाहर हैं। सच तो यह है कि अल्पसंख्यकों में भी पिछड़े हुए लोग वर्तमान हैं। ईसाई भी पिछड़े हुए हैं। प्रान्तीय नौकरियों में उनको पर्याप्त प्रतिनिधान नहीं मिला है। यही बात मुसलमानों और परिगणित जातियों के साथ है। अगर पिछड़े लोगों के पक्ष में कोई प्रावधान करना है, तो वह इन लोगों के लिए भी लागू होना चाहिए जो वस्तुतः पिछड़े हुए हैं। मैं यहां यह बता दूं कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों के सिलसिले में अनुच्छेद 296 के अधीन ऐसा प्रावधान किया गया है। किन्तु वहां अनुच्छेद में इन लोगों के लिए नौकरियों में आरक्षण की बात नहीं कही गई है जैसा कि इस खंड (3) में कहा गया है। इसलिए मूलाधिकारों में तथा इस स्थल पर ही मुसलमान, ईसाई तथा परिगणित जाति जैसे अल्पसंख्यकों के लिए ऐसा प्रावधान करना जरूरी है।

और फिर पं. कुंजरू ने जो संशोधन रखा है उसके मैं विरुद्ध हूं, श्रीमान्। वह कहते हैं कि सरकार को यह अधिकार होगा या उसकी इच्छा पर यह निर्भर करेगा कि दस वर्षों के लिए वह आरक्षण की व्यवस्था रखे। ऐसे कामों के लिए हमें समय के आधार पर कोई मापदंड नहीं नियत करना चाहिए। इन लोगों की अनुन्नति एवं मन्दता तो उन अवस्थाओं के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है जो आज कई शताब्दियों से बल्कि युगों से चली आ रही है और आसानी से इनका अन्त नहीं किया जा सकता। इसलिए इस सम्बन्ध में हमारा वास्तविक मापदंड यह होना चाहिए कि इन दुखस्थाओं के विनाश के लिए हम किन उपायों का अवलम्बन कर रहे हैं और उनके फलस्वरूप इन लोगों में कितनी उन्नति हुई है। इसलिए जब ये लोग उन्नत हो जायेंगे और देश के अन्य वर्गों के समकक्ष आ जायेंगे तो ये आरक्षण स्वतः ही समाप्त हो जायेंगे। मेरा ऐसा ख्याल है कि इसके लिए कोई अवधि नियत करना आवश्यक नहीं है। हो सकता है कि 10 वर्ष से भी कम में यह सम्प्रदाय उन्नत हो जाये या हो सकता है 10 वर्ष से भी इसमें ज्यादा लग जाये। जैसा कि मैंने कहा है इस सम्बन्ध में मापदंड यही होना चाहिए कि अनुन्नति उत्पन्न करने वाली अवस्थाओं के विनाश के लिए जो उपाय काम में लाये जा रहे हैं उनका कितना प्रभाव पड़ा है और कितनी सफलता मिलती है। अब मैं प्रस्तावक महोदय से अनुरोध करूंगा कि 'backward' शब्द को यहां से

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

हटा दें और यहां सभा में इसे स्पष्ट कर दें कि इस खंड में आरक्षण की जो बात कही गई है वह उन सभी अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के लिए लागू है जिन्हें ऐसे आरक्षणों की आवश्यकता है।

अब सिर्फ एक बात और है जिसका मैं उल्लेख करूंगा। श्रीमान्, जब भी हम आरक्षणों की, अधिकार एवं विशेषाधिकारों की चर्चा करते हैं तो साम्प्रदायिकता का हौवा खड़ा किया जाता है। अगर लोग अपने अधिकारों की मांग करते हैं तो इसमें साम्प्रदायिकता की कोई बात नहीं है। जब लोग यह देखते हैं कि उनको पर्याप्त प्रतिनिधान नहीं प्राप्त है तो ठीक ही उनको यह ख्याल होता है कि उनको समुचित प्रतिनिधान मिलना चाहिए और ऐसी हालत में ऐसी मांग सामने आती है। यह मांग इसलिए वह करते हैं कि नौकरियों में उनको प्रतिनिधान प्राप्त नहीं है जिससे उनको असंतोष है। यह असंतोष दूर होने पर लोगों के दिल एक हो जायेंगे। दिलों की एकता से ही देश की और देशवासियों की भलाई होगी और ऊपरी एकता का हम जो भी प्रयास करेंगे वह व्यर्थ है। अन्तर तो रहेगा ही फिर भी जहां तक हो अनुरूपता रहनी चाहिए और हम सब यही चाहते हैं कि देश में अनुरूपता हो। यह अनुरूपता हम देशवासियों में संतोष-भावना लाकर ही प्राप्त कर सकते हैं। लोगों में संतोष-भावना लाने के लिए नौकरियों में आरक्षण देना भी एक उपाय है जिसे हम बरत सकते हैं। तब आप लोगों से कह सकते हैं ''देखिये आप लोगों को नौकरियों में समुचित जगहें मिल गई हैं और अब आपको कोई शिकायत न होनी चाहिए।'' जब ये लोग यह देखेंगे कि इन्हें भी औरों के समान ही अवसर मिल रहे हैं तो इनमें एकता आ जायेगी और फिर इस तथाकथित साम्प्रदायिकता का कोई प्रश्न ही नहीं रह जायेगा। ऐसे बहुत से देशों की मिसाल हमारे सामने मौजूद है जिन्होंने इस पद्धति को अपनाकर, जिसकी कि हम यहां प्रशंसा कर रहे हैं, सफलता प्राप्त की है और साम्प्रदायिकता-सम्बन्धी समस्या का अन्त कर दिया है। इसलिए मेरा यह कहना है कि अनेकता दूर करने और एकता लाने का यह भी एक उपाय है कि सरकारी नौकरियों में लोगों के प्रतिनिधान की व्यवस्था की जाये और उनके मन में यह भाव उत्पन्न किया जाये कि देश के शासन में उनका वास्तविक रूप में हाथ है।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): उपाध्यक्ष महोदय, जिस बात पर मैं सभा के सामने जोर देना चाहता हूं उसकी एक या दो सदस्यों ने चर्चा कर दी है। माननीय पं. कुंजरू ने कहा है कि वह यह जानना चाहते हैं कि अनुच्छेद 10 और 296 में क्या सम्बन्ध है। अनुच्छेद 10 में यह कहा गया है कि ''सब नागरिकों (जानपदों) को राज्याधीन नियुक्ति के विषय में अवसर-समता होगी।'' इसका यही अर्थ हुआ कि जब जगहों पर नियुक्तियां होंगी तो खुली प्रतियोगिता के आधार पर लोग रखे जायेंगे और चोटी के लोग ही लिए जायेंगे। यह तो ठीक ही है और यही पद्धति बरती जानी चाहिए।

किन्तु जब हम अनुच्छेद 296 तथा 297 को लेते हैं तो यह देखते हैं कि इन दोनों में यह कहा गया है कि अल्पसंख्यकों के दावों पर ध्यान रखा जायेगा। अनुच्छेद 296 कहता है:

> ''Subject to the provisions of the next succeeding article the claims of all minority communities shall be taken into consideration, consistently with the maintenance of efficiency of administration, in the making of appointments...''
>
> (अगले अनुगामी अनुच्छेद के प्रावधानों के अधीन रहते हुए... नियुक्तियों में प्रशासन दक्षता के संधारण का ध्यान रखते हुए सब अल्पसंख्यक समुदायों के दावों पर ध्यान रखा जायेगा।)

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों अनुच्छेदों में कुछ परस्पर विरोध है। अगर खुली प्रतियोगिता और योग्यता के आधार पर ही उन जगहों को भरना है तो अवश्य ही अल्पसंख्यकों के दावों को हम स्वीकार नहीं कर सकते हैं। उस हालत में तो सर्वोत्तम व्यक्ति ही लिए जायेंगे और अगर अल्पसंख्यकों के कुछ लोग आ जाते हैं तो यह इस कारण से नहीं कि अल्पसंख्यक समझ कर उनके दावों का ध्यान रखा गया है बल्कि इस कारण कि अनुच्छेद 10 के अधीन भारतीय नागरिक की हैसियत से उन्हें अवसर-समता प्राप्त थी। मगर खुली हुई प्रतियोगिता में ये सफल होते हैं और इन्हें जगहें मिलती हैं तब तो ठीक ही है, किन्तु मगर इस प्रणाली से उनको पर्याप्त प्रतिनिधान नहीं मिल पाता है तो उस हालत के लिए अनुच्छेद 296 यह कहता है कि उनका विशेष रूप से ध्यान रखा जायेगा और ऐसा किया जायेगा कि उनको पर्याप्त प्रतिनिधान प्राप्त हो जाये।

मेरा कहना यह है, श्रीमान्, कि दो ही बातें हो सकती हैं। या तो सबको समान अवसर दिया जायेगा या किसी के लिए खासतौर पर ख्याल किया जायेगा।

[सरदार हुकुम सिंह]

अनुच्छेद 10 का कहना है कि सबको अवसर-समता होगी और इसके बाद ही एक निषेधात्मक खंड द्वारा इस बात पर जोर दिया जाता है कि धर्म या जाति के आधार पर किसी नागरिक के विरुद्ध कोई भेदभाव न बरता जायेगा। यह तो बिल्कुल दुरुस्त है; किन्तु जब यह नहीं बताया गया है कि अनुच्छेद 296 का यह अनुच्छेद अतिक्रमण या 296 स्वतंत्र रहेगा तो जरूर ही हम यह नहीं समझ पाते हैं कि इन दोनों का सम्बन्ध क्या होगा। उस हालत में अल्पसंख्यकों की क्या गति होगी? अनुच्छेद 10 के खंड (3) में यह नई शब्दावलि 'backward class of citizens'' (पिछड़े हुए जानपद वर्ग) रखी गई हैं 'दलित वर्ग' या 'परिगणित जातियां' यह सब नाम तो हमने सुने हैं पर जहां तक हमारे प्रदेश या प्रान्त का सम्बन्ध है, हमने 'backward class of citizens' को कभी किसी कानून में प्रयुक्त होते नहीं देखा। अभी-अभी हमें यह बताया गया है कि 'backward classes' की परिभाषा मद्रास प्रान्त में दी गई है। वहां यह बात हो सकती है पर मुझे इसकी जानकारी नहीं है। एक तरफ तो इस नये शब्द से परिगणित जातियों के सदस्य आशंकित हो गये हैं और यहां इस बात पर जोर दे रहे हैं कि यह बात स्पष्ट बता देनी चाहिए कि यह शब्द केवल उनके लिए ही लागू है और यह उनके फायदे के लिए रखा जा रहा है या नहीं। दूसरी तरफ इससे अल्पसंख्यक वर्गों को यह आशंका हो रही है कि उनको 'backward' तो नहीं गिना जा रहा है और जैसा कि पं. कुंजरू ने कहा 'backward classes' में अल्पसंख्यकों के लोग भी शामिल किये जायेंगे या नहीं और अगर उनको पर्याप्त प्रतिनिधान नहीं मिला है तो उनके साथ कोई रियायत की जायेगी या नहीं और अगर 'backward class' में उनको शामिल नहीं किया जाता है तो अनुच्छेद 296 के अधीन उनकी क्या गति होगी। जब तक इन अनुच्छेदों में—10 तथा 296—समन्वय नहीं कर दिया जाता तब तक अनुच्छेद 296 द्वारा प्रावहित संरक्षण भ्रमात्मक ही रहेंगे और हम लोगों के मन में यह आशंका बनी रहेगी कि इस अनुच्छेद से हमें कुछ लाभ भी होगा या नहीं।

***श्री के.एम. मुंशी:** उपाध्यक्ष महोदय, यहां सभा में जो आलोचना हुई है वह मुख्यत: दो ही बातों को लेकर हुई है। एक तो संशोधन नं. 82 के दायरे के सम्बन्ध में और दूसरे 'backward' शब्द को लेकर मैं पहली बात के सम्बन्ध में,

और खास करके माननीय मित्र श्री गुप्त जी ने जो कुछ कहा है तथा माननीय मित्र श्री कामत ने जो टिप्पणी की है उसके सम्बन्ध में पहले बोलना चाहता हूं।

मैं चाहता हूं कि सभा यह समझे कि इस अनुच्छेद का दायरा क्या है? अनुच्छेद 10 के खंड (2) में सभा ने और बातों के साथ 'residence' को भी जोड़ दिया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): यह जोड़ा तो नहीं गया है। इसका अभी केवल सुझाव आया है।

***श्री के.एम. मुंशी:** यह प्रस्ताव रखा गया है कि यह शब्द जोड़ दिया जाये। खैर, मेरी गलती सुधार दी गई है। हमने इस आशय का एक संशोधन रखा है जिसका मतलब यह है कि हम इसका समर्थन करने जा रहे हैं और आशा है हमें सभा का भी समर्थन मिलेगा। प्रस्तुत संशोधन अनुच्छेद 10(2) में 'residence' शब्द रखना चाहता है और उस शब्द के आ जाने का अर्थ यह होगा कि कोई भी राज्य यहां तक कि म्युनिसिपल बोर्ड और स्थानीय बोर्ड जैसा कोई स्थानीय प्राधिकारी भी इस आशय का नियम नहीं बना सकता है कि किसी पदधारी या नियुक्त कर्मचारी के लिए उस स्थान विशेष का निवासी होना आवश्यक होगा। इससे बड़ी ही असुविधा खड़ी हो जायेगी। उदाहरण के लिए मैं आपको बताऊं कि 'office' और 'employment' शब्द को अलग-अलग रखने के लिए एक संशोधन आया है। उसमें वह भी पद (office) आ जायें जो अवैतनिक हैं। किसी जिला-बोर्ड के चेयरमैन को ही उदाहरण के लिए ले लीजिए। हो सकता है कि प्रान्तीय विधान-मंडल के लिए निवास-सम्बन्धी प्रतिबन्ध रखना जरूरी हो जाये। किन्तु प्रान्तीय विधान-मंडल को ऐसा करने का अधिकार नहीं हो सकता है जब तक कि सभा माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी के संशोधन को स्वीकार न कर ले। इस संशोधन का कुल उद्देश्य यही है कि निवास विषयक खंड के अनुसार अगर निवास के बारे में कोई प्रतिबंध रखना आवश्यक ही हो तो इसे केवल संसद यानी केन्द्रीय विधान-मंडल ही करे। इस परिवर्तन का कारण यह है कि योग्यता या पात्रता के सम्बन्ध में जो भी नियम हो वह समूचे देश में एक तरह का हो और ऐसा न हो कि कोई विधान-मंडल इस प्रावधान का दुरुपयोग करके निवास के सम्बन्ध में कोई असम्भव शर्त रख दे।

[श्री के.एम. मुंशी]

दूसरी कठिनाई जो कतिपय सदस्यों के दिमाग में आ रही है वह है 'स्टेट' शब्द को लेकर। विधान में 'स्टेट' शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है और मैं सभा का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट करूंगा। संशोधन में कहा गया है कि: ''Any State for the time being specified in Schedule I.'' (कोई राज्य जो उस समय के लिए अनुसूची 1 में उल्लिखित हो)। इसलिए हमें 'स्टेट' शब्द का अर्थ जानना होगा। अब मैं अनुच्छेद 1 का उल्लेख करूंगा जिससे कहा गया है: ''भारत राज्यों का संघ होगा। राज्यों से प्रथम अनुसूची के भाग 1, 2 और 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्य अभिप्रेत होंगे।''

अब अगर प्रथम अनुसूची को देखें तो उसका शीर्षक यों है: ''भारत के राज्य और राज्यक्षेत्र''। जहां तक प्रथम अनुसूची का सम्बन्ध है भाग 1, 2 और 3 में ऐसे राज्यों का उल्लेख है जो स्वायत्त-शासन प्राप्त इकाइयों के रूप में हैं। पर भाग 4 में जिन राज्यक्षेत्रों का उल्लेख है वह है अंडमान और निकोबार के द्वीप-समूह। इस 'Any State for the time being specified in the First Schedule'' के अन्दर वही राज्य आयेंगे जिनका उल्लेख भाग 1, 2 और 3 में किया गया है, पर अंडमान और निकोबार के द्वीप-समूह इसमें नहीं आ सकेंगे।

एक या दो मित्रों को ''स्टेट'' शब्द की परिभाषा को लेकर कुछ कठिनाई दिखाई दे रही है।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं अपने विद्वान् मित्र श्री मुंशी का ध्यान प्रथम अनुसूची में प्रयुक्त भाषा की ओर आकृष्ट करूंगा। भाग 1 में 'territories' (राज्यक्षेत्र) का भी उल्लेख है। वहां कहा गया है कि: ''इस संविधान के प्रारम्भ होने से सद्य पूर्व शासक के प्रान्तों के नाम से निम्न प्रकार ज्ञात राज्यक्षेत्र।'' यहां जो 'territory' (राज्यक्षेत्र) शब्द का प्रयोग हुआ है और वह केवल अंडमान और निकोबार द्वीप-समूहों के सम्बन्ध में ही नहीं प्रयुक्त हुआ है। भाग 1, 2 और 4 में 'territory' (राज्यक्षेत्र) शब्द रखा गया है।

***श्री के.एम. मुंशी:** मैं जो कुछ कह रहा हूं उसे ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा अगर मेरे मित्र करें तो मुझे निश्चय है कि वह यह समझ जायेंगे, पर हां, अगर वह न समझने पर ही उतारू हो गये हों तो बात दूसरी है।

श्री एच.वी. कामतः यह बात तो माननीय वक्ता पर ही लागू होती है श्रीमान्।

***श्री के.एम. मुंशीः** मैं यह कह रहा हूं कि आप अनुच्छेद 1 के शब्दों को देखिये। वहां कहा गया है ''The State shall mean the State, etc.'' (राज्यों से अभिप्रेरित होंगे वे राज्य...) इसके अन्तर्गत संघ का केन्द्रीय शासन नहीं आता। इसका मतलब है स्वायत्त-शासन प्राप्त राज्यों से जिनका उल्लेख भाग 1, 2 और 3 में किया गया है। भाग 4 में सम्बन्ध में अनुच्छेद 1(3) (ख) में यहां कहा गया है ''कि प्रथम अनुसूची में भाग 4 में उस समय उल्लिखित रहे राज्य-क्षेत्र''।

इसलिए निकोबार द्वीप-समूह, अनुच्छेद 1 के अर्थ में राज्य नहीं माने जा सकते हैं। वे केवल राज्य-क्षेत्र हैं। इन राज्य क्षेत्रों का शासन उनके अपने किसी विधान-मंडल द्वारा नहीं होता और न वे स्वायत्त-शासन प्राप्त राज्य ही हैं। उन पर तो सीधे केन्द्र का ही नियंत्रण है और केन्द्र अपनी ही नौकरियों के सम्बन्ध में यह भेद नहीं बरत सकता कि उम्मीदवार इस प्रान्त का है या उस प्रान्त का है। केन्द्र तो अपने हर नागरिक को समदृष्टि से ही देखेगा। इस रोशनी में देखने से पता चलेगा कि इस संशोधन का मतलब यही है कि भाग 1, 2 और 3 में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में तथा इन राज्यों के अधीन पदों के सम्बन्ध में विधान-मंडल निवास सम्बन्धी प्रतिबंध आरोपित कर सकता है।

दूसरी कठिनाई उपस्थित की गई थी अनुच्छेद 7 के सम्बन्ध में। इस अनुच्छेद में ''The State'' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस शब्द का एक खास अर्थ हो गया है और यह केवल उन्हीं ''the State'' शब्दों के लिए लागू है जो विधान के भाग 3 में प्रयुक्त हुए हैं अर्थात् जो मूलाधिकारों के प्रयोजन के लिए प्रयुक्त हुए हैं। अनुच्छेद 1 में अथवा अनुसूची ने प्रयुक्त 'स्टेट्स' (राज्य) के लिए यह लागू नहीं होते। इसलिए जब इस विचाराधीन संशोधन में जहां ''any State'' आया है तो इसका अर्थ अनुच्छेद 7 में व्यक्त ''the State'' से नहीं है। मैं कहूंगा कि इस संशोधन से यह बिल्कुल साफ है कि प्रथम अनुसूची के भाग 1, 2 और 3 में उल्लिखित राज्यों के अधीन जो नौकरियां हैं उन्हीं के प्रयोजन के लिये ही केन्द्रीय विधान-मंडल कानून बना सकता है और न कि राज्यक्षेत्र के किसी ऐसे भाग के लिए जिस पर सीधे केन्द्रीय शासन का ही नियंत्रण है। मेरा कहना है कि अगर अपने एक प्रान्त और दूसरे प्रान्त के नागरिकों में भेद बरतता

[श्री के.एम. मुंशी]

है तो यह सिद्धान्ततः गलत है। इसलिए यह जो संशोधन है वह बिल्कुल सही है।

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, अगर मैंने मित्र की बातों को ठीक-ठीक सुना है तो उन्होंने अभी-अभी यह कहा है कि ''any State'' शब्द प्रथम अनुसूची के केवल भाग 1, 2 तथा 3 के सम्बन्ध में ही आये हैं। अगर यही बात है तो आप साफ-साफ इस संशोधन में यही क्यों नहीं रखते कि ''any State for the time being specified in Part I, II, and III of the First Schedule'' ताकि यह विवाद ही समाप्त हो जाये?

***श्री के.एम. मुंशीः** विनम्रतापूर्वक मैं अपने मित्र को यह बताऊं कि प्रथम अनुसूची का शीर्षक अनुच्छेद 1 और 4 के प्रयोजन के लिये यों है: ''The States and territories of India'' (भारत के राज्य तथा राज्य-क्षेत्र) और निकोबार द्वीप-समूह राज्यक्षेत्र हैं, राज्य नहीं। इसलिए जो भी व्यक्ति इन दोनों अनुच्छेदों की तुलना करेगा उसकी समझ में यह बात साफ आ जायेगी। मुझे इस सम्बन्ध में और कुछ नहीं कहना है।

***श्री एच.वी. कामतः** यदि मसौदा-समिति के बुद्धि-सम्पन्न सदस्य ऐसा ही समझते हैं तो मैं इस बात पर जोर नहीं देना चाहता क्योंकि अन्ततोगत्वा इस संशोधन के सम्बन्ध में उनकी ही बात रहेगी।

श्री के.एम. मुंशीः मेरा ख्याल है कि मैंने सभा को यह बात साफ-साफ समझा दी है और अब उसे इसका अर्थ स्पष्ट हो गया होगा। मेरी ओर से इस सम्बन्ध में और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

दूसरी बात जो यहां उठाई गई है वह है 'backward' शब्द के सम्बन्ध में और अवश्य ही मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर आम बहस का जवाब देते समय इसकी व्यापक व्याख्या करेंगे। किन्तु इस सम्बन्ध में एक दृष्टिकोण है जिसे मैं सभा के समक्ष उपस्थित करूंगा। मैं परिगणित जातियों का सदस्य नहीं हूं और जो दृष्टिकोण मैं यहां रख रहा हूं उसे शायद मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर और विशद् रूप में रख सकते हैं। 'backward' शब्द के प्रयोग से कहीं उनके अधिकारों, विशेष सुविधाओं और अवसरों में कमी न आ जाये, ऐसी आशंका परिगणित जाति के कई सदस्यों ने यहां व्यक्त की है। मैं तो इसकी कल्पना भी नहीं कर

पाता हूं कि विधान-परिषद् के एक या डेढ़ वर्ष के अनुभव के बाद भी कोई हरिजन सदस्य आखिर कैसे यह सोच सकता है कि वे लोग पिछड़े हुए न माने जायेंगे। जब तक वह पिछड़े हुए हैं, जरूर ही उनकी शुमार 'backward' में की जायेगी। मैं तो उस समय की भी कल्पना नहीं कर पाता हूं जब भारतवर्ष में कोई पिछड़ा हुआ वर्ग होगा, जिस में हरिजन न शामिल किये जायेंगे। किन्तु जिस बात की ओर मैं सदस्यों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं वह यह है। आज डेढ़ साल से यहां सभा में क्या होता आ रहा है इसको जरा सोचिये। अनुच्छेद 11 को लीजिए। जब से विधान का मसौदा अल्पसंख्यक-समिति एवं मूलाधिकार-समिति की उपसमिति के समक्ष रखा गया है, एक भी गैर हरिजन सदस्य ने कभी कोई आपत्ति इसके सम्बन्ध में नहीं उठाई। बल्कि इसके विपरीत हम सदस्य, जो हरिजन सम्प्रदाय के नहीं हैं, इस सम्बन्ध में सदा सबके आगे रहे हैं और इस अनुच्छेद को स्वीकृत देखने के लिये प्रयत्नशील रहेंगे ताकि हमारे देश पर जो कलंक-कालिमा लगी है वह मिट जाये। सिर्फ इतना ही नहीं बल्कि अनुच्छेद 296 को तथा इस विशेष प्रावधान को भी अन्य सम्प्रदाय के सदस्यों ने ही यहां उपस्थित किया है और इनका पूर्णतः समर्थन किया है और सम्पूर्ण सभा का उन्हें समर्थन प्राप्त हुआ है। इसलिये यह आशंका तो होनी ही नहीं चाहिए कि यह सभा अभी या आगे चलकर कभी हरिजन बन्धुओं के विरुद्ध कोई भेदभाव बरतेगी। मेरी समझ से ऐसी आशंका बिल्कुल निराधार है। इस खंड द्वारा हम दो अभिप्राय सिद्ध करना चाहते हैं। एक तो यह है कि मूलाधिकार के अधीन राज्याधीन नौकरियों में हमें चरम सीमा की कार्य-कुशलता उपलब्ध हो सके—ऐसी कार्य-कुशलता जिससे राज्याधीन नौकरियों का सारा काम बड़ी शीघ्रता से और प्रभावकारी रूप में ठीक-ठीक चलता रहे। और साथ ही, देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में आज जो अवस्था वर्तमान है उसको देखते हुए, हम यह भी चाहते हैं कि पिछड़े हुए वर्ग को—उन वर्गों को जो वस्तुतः पिछड़े हुए हैं—सरकारी नौकरियों में जगह मिले क्योंकि यह देखा गया है कि सरकारी नौकरियों के पाने से व्यक्ति का दर्जा ऊंचा हो जाता है और उसे देश की सेवा करने का अवसर मिलता है। हम चाहते हैं कि यह अवसर हर सम्प्रदाय को दिया जाये, यहां तक कि पिछड़े हुए लोगों को भी दिया जाये। ऐसी स्थिति में हमें एक ऐसा शब्द ढूंढ़ना ही होगा जो व्यापक हो और उसके लिए 'backward' क्लासेज़' शब्द यथासम्भव सर्वोत्तम है। आप इसे अनुच्छेद 301 के साथ मिलाकर पढ़िये तो यह साफ हो जायेगा कि 'backward' उस जन-समुदाय के लिए प्रयुक्त हुआ है—चाहे आप उसको स्पृश्य कहिए या अस्पृश्य, चाहे वह

[श्री के.एम. मुंशी]

किसी भी सम्प्रदाय का हो—जो इतना पिछड़ा हुआ है कि उसके लिए सरकारी नौकरियों में विशेष रूप से आरक्षण देना जरूरी हो। 'backward' शब्द के सम्बन्ध में किसी भी सदस्य को कोई आशंका हो, इसका कोई कारण मैं नहीं देख पाता।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** यह तो अपने पक्ष को स्वयं सिद्ध मान लेना है और बार-बार एक ही घेरे में चक्कर काटना है।

***श्री के.एम. मुंशी:** मेरे माननीय मित्र के प्रयास के बावजूद भी मैं तो घेरे को नहीं देख पाता हूं।

***एक माननीय सदस्य:** 'backward' क्लासेज का जो उल्लेख किया गया है, आखिर वे कौन लोग हैं?

***श्री के.एम. मुंशी:** अनुच्छेद 301 में यह साफ-साफ कहा गया है कि कौन-कौन लोग पिछड़े हुए 'backward' हैं, इसकी जांच के लिये एक कमीशन नियुक्त किया जायेगा। यहां इस सम्बन्ध में मद्रास की चर्चा की गई है। मैं आपको बताऊं कि बम्बई प्रान्त में आज कई वर्षों से बैकवर्ड की एक परिभाषा चालू है और उसके अनुसार 'backward' में न केवल हरिजन और सूचीबद्ध कबायली जातियां ही आती हैं, बल्कि वह सभी पिछड़ी हुई जातियां ली जाती हैं जो सामाजिक दृष्टि से, आर्थिक दृष्टि से और शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ी हुई हैं। इसलिए यह जरूरी नहीं है कि हम 'backward' शब्द के दायरे को किसी सम्प्रदाय विशेष तक ही सीमित रखें। जो भी पिछड़ा हुआ होगा उस पर यह लागू होगा और मेरे ख्याल से माननीय सदस्य की आशंका बिल्कुल निराधार है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उपाध्यक्ष महोदय, मुझे डर है कि मेरी बात का यथेष्ट प्रभाव न पड़ सकेगा, क्योंकि अभी मुझ से पहले श्री मुंशी बोल चुके हैं, जिन्हें सभा एक बहुत ही दक्ष वकील के रूप में जानती है और मैं देख रहा हूं कि अपने पक्ष-प्रतिपादन में मूल कौशल वह यही अपना रहे हैं कि न्यायाधीश को ही विभ्रम में डाल दिया जाये और, अगर मैंने उनकी बातों को ठीक-ठीक सुना है, तो उन्होंने यहां उन सदस्यों के मन में जरूर भ्रम पैदा कर दिया होगा

जिन्हें अनुच्छेद 10 के प्रावधानों के सम्बन्ध में कुछ संदेह था। अभी हाल में, श्रीमान्, एक समाचार-पत्र में अपने विधान के सम्बन्ध में सिलोन विश्वविद्यालय के कुलपति प्रसिद्ध विधान-पंडित प्रो. आइवर जेनिंग्स की टिप्पणी मैं पढ़ रहा था। मूलाधिकार सम्बन्धी अध्याय की आलोचना करते हुए आपने इसे वकीलों का कल्पवृक्ष बतलाया। इनकी रचना ऐसी है कि इनके अर्थों में काफी खींचातानी की जा सकती है और इस दृष्टि से अनुच्छेद 10 सर्वोपरि है। मेरा अपना मत यही है कि अगर मूलाधिकार सम्बन्धी अध्याय में इस अनुच्छेद को न रखा गया होता तो अच्छा था।

अब मैं इसके खंड (1) को ही लेता हूं। इसके अनुसार राज्याधीन सभी नौकरियों में सभी नागरिकों को अवसर-समता प्राप्त रहेगी। मैं पूछता हूं किस श्रेणी के नागरिकों को? शिक्षितों को? आशिक्षितों को? आखिर किसको? क्या एक अशिक्षित नागरिक सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष इस आशय का अभियोग उपस्थित कर सकता है कि उसको अवसर-साम्य नहीं दिया गया है? ये बातें मैं अपनी ओर से नहीं कह रहा हूं। प्रोफेसर जेनिंग्स की टिप्पणी में यही विचारधारा व्यक्त थी और उसे मैं आपके सामने रख रहा हूं।

अब मैं इस अनुच्छेद के खंड (2) पर आता हूं। मेरा ख्याल यही है कि महज माननीय मित्र श्री जसपतराय कपूर को राजी करने की कोशिश में 'birth' शब्द के बाद ''residence'' शब्द रख कर सभा को अकथ कठिनाइयों में डाला गया है। सारी कठिनाइयों का मूल कारण यही है। इसी को लेकर श्री मुंशी ने एक संशोधन रखा है और एक दूसरा संशोधन रखा है श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने। क्या 'residence' शब्द को रखने की कोई जरूरत है? मैं सभा से कहता हूं कि इसकी जरूरत नहीं है क्योंकि अगर निवास के आधार पर कोई भेदभाव बरता जायेगा, जिसकी कि संभावना हो सकती है, तो इसे यहां रखकर और 2(क) से निकाल कर आप इस मसले को नहीं हल कर सकते हैं।

***एक सदस्यः** उस हालत में 2(क) को निकाल ही दीजिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** यह तो सभा के करने की बात है। किन्तु मैं सभा को यह सुझाव दे रहा हूं कि हम लोग इस मसले पर तटस्थ रह सकते

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

हैं। हम श्री जसपतराय कपूर को 'residence' शब्द रखने का अधिकार न देंगे और श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर को भी यह मौका न देंगे कि वह कोई व्याख्यात्मक उपखंड रखें, जिससे हमारी सभी प्राप्त सुविधायें व्यर्थ हो जाती हों।

अब आप श्री अल्लादी कृष्णास्वामी के उस विशिष्ट संशोधन के शब्दों को देखिये जिस पर माननीय मित्र श्री मुंशी ने इतनी लम्बी वक्तृता दी है। उपाध्यक्ष महोदय, जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, इस सम्बन्ध में राय देने का अधिकारी मैं अपने को नहीं समझता। हमें यह देखना चाहिये कि आखिर पार्लियामेंट क्या करेगी? क्या यह ऐसा कोई व्यापक कानून बनायेगी जिससे सभी राज्यों की, सभी स्थानीय निकायों की, सभी ग्राम-पंचायतों की, (जो भी अनुच्छेद 7 के अनुसार राज्य ही समझे जायेंगे) तथा सभी विश्वविद्यालयों की सारी आवश्यकताएं पूरी हो जाती हों? अथवा हर मौके पर, जब भी कोई विशेष स्थानीय निकाय या विश्वविद्यालय या ग्राम-पंचायत कोई खास छूट मांगेंगी तो पार्लियामेंट एक नया कानून बनायेगी? आखिर क्या बात सोची गई है, इसका कुछ भी पता नहीं चलता। इस प्रयोजन के लिए क्या पद्धति बरती जायेगी, इसका भी हमें कुछ ज्ञान नहीं है। इस खूबी से सभी बातें इसमें गोल-मटोल रखी गई हैं कि हम यह भी नहीं जानते कि ऐसा व्यापक कानून बनाने के लिये पार्लियामेंट में प्रस्ताव रखा भी जा सकेगा या नहीं। और आखिर इसका प्रस्ताव पार्लियामेंट में आया भी तो वह किस प्रकार का कानून बनायेगी?

मेरे मित्र श्री जसपतराय का संशोधन निरर्थक हो जायेगा, अगर पार्लियामेंट यह निर्णय कर देती हैं कि किसी प्रदेश के किसी पद की पात्रता पाने के लिये अभ्यर्थी का वहां दस वर्ष का निवास होना चाहिये। अथवा क्या पार्लियामेंट एक साल के निवास का प्रतिबन्ध रखेगी या आप यह समझते हैं कि शरणार्थियों की सुविधा के लिए वह 6 माह का प्रतिबंध रखेगी या निवास सम्बन्धी कोई प्रतिबंध रखेगी ही नहीं? मेरे मित्र श्री कामत ने जिन संदेहों का उल्लेख किया है वह सही हैं और मेरा मत तो यह है, खंड (2) (क) जैसे गोलमटोल खंड न रख कर हम पार्लियामेंट की सद्बुद्धि पर निश्चित होकर भरोसा कर सकते हैं। जिस रूप में विधान हमारे सामने आया है उसके अनुसार तो हम सभी बातों को पार्लियामेंट पर,

विधान-मंडल पर, सर्वोच्च न्यायालय पर तथा उन वकीलों पर छोड़ रहे हैं जो इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे। आखिर कोई न कोई प्रदेश तो ऐसा होना चाहिए जिसके निवासियों के सद्विवेक पर हम इसे छोड़ सकें। हम इसी बात की तो यहां कोशिश कर रहे हैं कि लोग अपने सद्विवेक से उन विचारों को व्यर्थ न होने दें जिन्हें आज हम अपनी मान्यता दे रहे हैं।

श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर का संशोधन यह कहता है, श्रीमान्, कि: ''...under any State for the time being specified in the First Schedule or any local or other authority within its territory, any requirement as to residence within that State prior to such employment or appointment'' (...चालू समय के लिये प्रथम अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य के अधीन या उसके राज्य-क्षेत्रान्तर्गत किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन किसी पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में, ऐसी सेवा युक्ति या नियुक्ति से पूर्व उस राज्य में अभ्यर्थी के निवास को लेकर किसी प्रतिबंध का विनिधान करता हो) इस संशोधन के समर्थन में श्री मुंशी ने बड़ी योग्यता और पाण्डित्य से अपने पक्ष का प्रतिपादन किया है। किन्तु उनकी सभी बातों को ध्यानपूर्वक सुनने के बाद भी मैं यह समझ नहीं पाता कि आखिर किसी राज्य का यहां क्या सम्बन्ध है। मेरा तो सुझाव है कि इन दोनों ही संशोधनों को न रखा जाये। अगर कोई खास राज्य हमारे मत की उपेक्षा करता है और निवास सम्बन्धी प्रतिबन्ध पर जोर देता है तो इससे कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा।

अब मैं खंड (3) की ओर आता हूं। इस खंड में 'backward' शब्द के रखने पर कई मित्रों ने आपत्ति की है। इसमें शक नहीं कि उनमें से कइयों ने यह कहा है कि पहले इस प्रश्न के सम्बन्ध में सभा ने जो निर्णय किया था, उसके अनुसार मूल खंड में 'backward' शब्द नहीं रखा गया था। यह तो बाद की सोची हुई बात है और मसौदा-समिति के सदस्यों की सम्मिलित बुद्धिमत्ता के फलस्वरूप यह उपाय निकाला गया है ताकि जरूरत पड़ने पर इस खंड की व्यवस्था को ज्यादा लोगों पर लागू किया जा सके।

क्या मैं आपसे यह पूछ सकता हूं कि आखिर पिछड़ा हुआ नागरिक-वर्ग कौन है? यह किसी पिछड़ी हुई जाति पर लागू नहीं होता। यह किसी परिगणित जाति

[श्री टी.टी. कृष्णामाचारी]

या किसी सम्प्रदाय विशेष के लिये लागू नहीं होता। मैं कहता हूं कि भविष्य में उन्नत एवं अनुन्नत का निर्णय आप शिक्षा के ही आधार पर कर सकते हैं और अगर शिक्षा के आधार पर इसका निर्णय करते हैं तो हमारे 80 प्रतिशत देशवासी पिछड़े हुये नागरिक माने जायेंगे। आखिर इस बारे में अन्तिम निर्णय कौन देगा? शायद सर्वोच्च न्यायालय देगा। न्यायालय को इस बात का पता लगाना होगा कि पिछड़े हुये वर्ग में किसे शामिल किया जाये, इसके बारे में विधान-निर्माताओं का क्या अभिप्राय था। यहां 'जाति' शब्द नहीं रखा गया है बल्कि रखा गया है 'क्लास' (वर्ग) शब्द। वर्ग पिछड़ा हुआ है या नहीं, इसका निर्णय आप किस आधार पर करेंगे? आर्थिक अवस्थिति के आधार पर या शिक्षा के आधार पर या जन्म के आधार पर, आखिर किस आधार पर आप यह निर्णय करेंगे?

मेरे माननीय मित्र श्री मुंशी ऐसा समझते हैं कि यह शब्द मानो आसमान से टपक पड़ा है और मसौदा-समिति ने बुद्धिमत्तावश इसे उठा लिया है। मैं कहता हूं इससे वकीलों की बन आयेगी, यह खंड उनके लिये कल्पवृक्ष बन जायेगा। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं मसौदा-समिति के वकील सदस्यों ने अपने भाई-बन्धुओं के व्यापार को चमकाने के लिये और अपने सम्प्रदाय या वर्ग को अवसर देने की चेष्टा में तो कहीं ऐसा विधान नहीं रचा है जो छिद्रों से परिपूर्ण है।

***श्री के.एम. मुंशी:** मेरे माननीय मित्र भी वकील बनने की कोशिश कर सकते हैं।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: मुझे डर है कि यही कोशिश मुझे करनी पड़ेगी, जब श्री मुंशी जैसे लोग इस पेशे को छोड़कर दूसरे ज्यादा आमदनी वाले पेशों को अपना रहे हैं। अगर मेरे मित्र यही चाहते हैं कि मैं धृष्टता की बात सुना दूं तो मैं कह सकता हूं कि मैं वकील बनने की कोशिश कर सकता था और उस पेशे के साथ न्याय भी कर सकता था।

***श्री के.एम. मुंशी:** मैं जानता हूं, आप कर सकते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उपाध्यक्ष महोदय, श्री मुंशी से सम्भाषण करने के लिये मैं क्षमा-प्रार्थी हूं, यद्यपि तथ्य यह है कि उन्होंने ही इसके लिए उत्तेजना

प्रदान की। जो भी हो, यह ऐसा मसला नहीं है जिस पर वाग्युद्ध किया जाये।

अब पुनः खंड (3) की खूबियों की ओर आता हूं। मैं ऐसा समझता हूं, श्रीमान, कि इस अनुच्छेद की रचना ही ऐसी है कि इसके अर्थ के सम्बन्ध में काफी खींचातानी की जा सकती है। कुछ मित्रों को यह भय है कि 'backward' शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ लगाये जा सकते हैं, यद्यपि मेरा मत यही है कि ऐसे भय की कोई गुंजायश नहीं है क्योंकि इसमें मुझे रंचमात्र भी संदेह नहीं है कि अन्ततोगत्वा इसका अर्थ सर्वोच्च न्यायालय ही स्थिर करेगा चाहे वह जाति के आधार पर इसके सम्बन्ध में निर्णय करे या सम्प्रदाय के आधार पर या धर्म के आधार पर या शिक्षा के आधार पर अथवा आर्थिक अवस्थिति के आधार पर। अतः इस शब्द विशेष को रखने पर मैं मसौदा-समिति की तारीफ नहीं कर सकता। उनके दिमाग में, इस शब्द के सम्बन्ध में, जो भी ख्याल रहा हो, पर मैं तो यही समझता हूं कि इस खंड से बड़ी ही मुकद्दमेबाजी होगी।

अपना स्थान ग्रहण करने से पहले मैं सभा को यह सुझाव दूंगा, श्रीमान्, कि श्री जसपतराय कपूर के संशोधन पर विचार करने की अनुमति देकर तथा इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न श्री अल्लादी कृष्णास्वामी के संशोधन पर विचार करने की अनुमति देकर वह इस मसले को और जटिल न बना दें।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, बहस मुबाहिसे के सिलसिले में जो कई खास-खास सवाल उठाये गये हैं उनका जवाब देने से पहले अभी शुरू में ही मैं यह बता देता हूं कि श्री मिश्र द्वारा रखे गये संशोधन नं. 334 को नहीं स्वीकार कर सकता। मैं श्री नजीरुद्दीन अहमद के दो संशोधनों को भी—नं. 336 और 337वें—नहीं मंजूर कर सकता। हां, श्री इमाम के संशोधन नं. 338 को, श्री अनन्तशयनम् आयंगर के संशोधन नं. 77 द्वारा संशोधित रूप में स्वीकार करने के लिये मैं तैयार हूं। श्री जसपतराय कपूर के संशोधन नं. 340 को भी, श्री मुंशी तथा श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर के नं. 81 तथा 82 के संशोधनों द्वारा संशोधित रूप में स्वीकार कर सकता हूं।

मैं नही समझता कि संशोधन नं. 334, 336 तथा 337 के सम्बन्ध में मुझे कुछ कहने की जरुरत है। इसलिए अपने भाषण के सिलसिले में जो बातें मैं

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

कहूंगा वह दो ही बातों तक सीमित रहेंगी। एक तो निवास सम्बन्धी बात है जिस पर यहां इतना वादानुवाद हुआ है और दूसरी बात है 'backward' शब्द का अनुच्छेद 10(3) में प्रयोग। मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने मसौदा-समिति पर यह व्यंग कसा है कि बजाय एक विधान-निर्माण करने के, उसने सम्भवत: अपने कतिपय सदस्यों की हितपूर्ति के लिए एक ऐसी चीज तैयार कर दी है जो वकीलों के लिये एक कल्पवृक्ष है। मैं यह कहने के लिए तो नहीं तैयार हूं कि इस विधान से ऐसे सवाल खड़े ही न होंगे जिन पर विधि सम्बन्धी निर्वाचन की या न्यायालय द्वारा निर्णय की आवश्यकता न हो। मैं श्री कृष्णमाचारी से यह पूछता हूं कि क्या वह विश्व का एक भी ऐसा विधान दिखा सकते हैं जो वकीलों के लिए कल्पवृक्ष न हो। मैं उनसे खासतौर पर यह कहूंगा कि यह कानून सम्बन्धी उन रिपोर्टों के ढेर को देखें जो अमेरिका, कनाडा और अन्य देशों के विधानों के सम्बन्ध में तैयार हुये हैं। इसलिए, अगर इस विधान को भाष्यार्थ संघ न्यायालय के समक्ष ले जाना पड़े तो इसके लिए मैं रंचमात्र भी लज्जित नहीं हूं। हर विधान और मसौदा-समिति के साथ यही बात होती है। इसलिए इस बात के बारे में मैं ज्यादा कुछ नहीं कहूंगा।

अब मैं निवास सम्बन्धी प्रश्न को लेता हूं। यह तो एक बहुत ही सीधी बात है और मेरी समझ में नहीं आता कि मित्र श्री कृष्णमाचारी जैसा सबोध और चतुर व्यक्ति इस संशोधन के मूल उद्देश्य को क्यों न समझ सका।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उसी कारण से जिससे कि मेरे मित्र मूल अनुच्छेद में इस शब्द को रखना भूल गये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं समझ नहीं सका। अस्तु, इस संशोधन के उद्देश्य को मैं स्पष्ट किए देता हूं। यहां कई सदस्यों की यह भावना है कि जब हमने सम्पूर्ण देश के लिए एक सी नागरिकता स्थापित की है और इसमें प्रान्तों या रियासतों के अधिकार-क्षेत्र को लेकर कोई भेदभाव नहीं बरता है तो इसके साथ यह भी होना चाहिए कि भारतीय संघ के किसी भी राज्य में कोई पद धारण करने के लिए निवास सम्बन्धी कोई प्रतिबंध न लागू किया जाये; क्योंकि जिस मात्रा तक आप निवास सम्बन्धी प्रतिबंध लागू करेंगे, उसी मात्रा तक अपनी एक रूपी नागरिकता का महत्त्व कम हो जायेगा, जिसे विधान द्वारा हमने समस्त देश के लिए स्थापित किया है, यह करना चाहते हैं। इसलिए मेरी राय में यह

तर्क कि राज्याधीन नौकरियों में नियुक्ति के लिए निवास-सम्बन्धी कोई प्रतिबंध न लागू करना चाहिए, बिल्कुल सही है और ठोस तर्क है। किन्तु साथ ही हमें यह भी समझना चाहिए कि ऐसे लोग जो एक प्रान्त में दूसरे प्रान्त में एक राज्य से दूसरे राज्य में उड़ती चिड़िया की तरह सदा चक्कर काटा करते हैं, जिनका न उस प्रान्त से कोई खास सम्बन्ध है न वहां कोई जरिया है, उनको हम यह अनुमति नहीं दे सकते कि वह वहां आवें, पद के लिए आवेदन करें और फिर अपना काम बना वहां से चलते बने। इसलिए निवास-सम्बन्धी कुछ न कुछ प्रतिबंध तो रखना ही होगा। जब इस प्रश्न पर छानबीन की गई तो पता चला कि अभी भी कई प्रान्तों में वहां सरकारों ने ऐसे नियम बना दिए हैं जिनके द्वारा प्रान्त में किसी भी पद पर नियुक्त किए जाने के लिए वहां का एक निश्चित काल का वासी होना आवश्यक है, इसलिए संशोधन की मूलभूत योजना यह है कि आमतौर पर किसी पद के लिए निवास सम्बन्धी प्रतिबंध न होना चाहिए, किन्तु फिर भी इस सम्बन्ध में कुछ अपवाद तो बरता ही जा सकता है और यह असंगत नहीं है। हम तो केवल उसी प्रथा पर चल रहे हैं जो कि भिन्न प्रान्तों में अरसे से चलती आ रही है। किन्तु इस सम्बन्ध में हमने यह देखा कि भिन्न-भिन्न प्रांतों में एक अवधि तो निश्चित कर दी गई है। जितने दिनों का वहां निवासी होना अभ्यर्थी के लिए आवश्यक है पर सब जगह एक सी अवधि नहीं रखी गई है। कुछ प्रान्तों में ऐसा नियम है कि अभ्यर्थी के लिये यह जरूरी है कि वह उस प्रान्त में बस गया हो। इसका क्या मतलब है यह समझ में नहीं आता। दूसरों ने 10 वर्ष का बाशिन्दा होना जरूरी ठहराया है और कइयों ने सात वर्ष की ही अवधि रखी है। इसलिए ऐसा अनुभव किया गया कि निवास-सम्बन्धी पात्रता तो वांछनीय है पर निवास-सम्बन्धी जो भी प्रतिबंध हों वह सर्वदा समस्त भारतवर्ष में एक समान होना चाहिए। सुतरां यदि आपका उद्देश्य यह है कि सर्वत्र निवास-सम्बन्धी अवधि एक सी हो तो इसकी प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि इसको नियत करने का अधिकार आप संसद को दें न कि किसी इकाई को चाहे वह प्रान्त हो या रियासत। इस संशोधन में निवास सम्बन्धी जो शर्त रखी गई है उसके पीछे मूल अभिप्राय यही है।

मेरे मित्र श्री कामत ने जो प्रश्न उठाया है उसके सम्बन्ध में मैं नहीं बोलना चाहता, क्योंकि श्री मुंशी तथा एक अन्य मित्र भी उस पर काफी प्रकाश डाल

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

चुके हैं। इन लोगों ने श्री कामत को यह बता दिया है कि संशोधन की भाषा किस तरह विधान के अन्य प्रावधानों के अनुरूप है। अब मैं उस प्रश्न की ओर आता हूं जिसको लेकर यहां सदस्यों में बहुत हलचल है अर्थात् अनुच्छेद 10(3) में प्रयुक्त 'backward' शब्द को लेता हूं। शुरू में ही मैं कुछ आम बातें कह देना चाहता हूं ताकि सदस्य यह समझ जायें कि 'backward' शब्द का ठीक-ठीक क्या प्रयोजन है, क्या महत्त्व है और इसे इस खास खंड में रखने की क्या जरूरत थी। यदि सदस्य इस विषय पर आपस में मतों का आदान-प्रदान करें और इसे समझने की चेष्टा करें तो उन्हें पता चलेगा कि इस सम्बन्ध में तीन दृष्टिकोण वर्तमान है और इन तीनों को ही सन्तुष्ट करना होगा, अगर हमें कोई व्यवहार में आने योग्य योजना तय करनी है जो सभी को मान्य हो। इनमें पहला दृष्टिकोण यह है कि सभी नागरिकों को अवसर समता प्राप्त होनी चाहिए। इस सभा के अनेक सदस्यों की यह इच्छा है कि प्रत्येक व्यक्ति को, जो किसी विशेष पद के लिए योग्य हो, इस बात की आजादी होनी चाहिए कि वह उसके लिए आवेदन कर सके, परीक्षा में बैठ सके और यह निश्चित करने के लिए कि वह पद के योग्य है या नहीं, उसकी योग्यता की जांच होनी चाहिए और इस सम्बन्ध में अवसर-साम्य के सिद्धांत को अमल में लाने पर कोई प्रतिबंध कोई बाधा नहीं होनी चाहिए। दूसरा दृष्टिकोण जो ज्यादा करके सभा के एक वर्ग का है वह यह है कि किसी वर्ग या सम्प्रदाय के पक्ष में किसी प्रकार भी आरक्षण (resevation) की व्यवस्था न होनी चाहिए और सभी नागरिकों को अगर वह योग्य हैं तो जहां तक सरकारी नौकरियों का सम्बन्ध है, समान रूप से अवसर मिलना चाहिए। अगर हमें यह सिद्धांत बरतना है तो उनकी राय है कि हमें इसे पूर्ण मात्रा में बरतना चाहिए। फिर एक तीसरा दृष्टिकोण हमारे समक्ष है और इसके पीछे एक बड़ा जनमत है। यह पक्ष इस बात पर जोर देता है कि सैद्धांतिक दृष्टि से अवसर-समता का सिद्धांत बहुत ही अच्छा है, किन्तु फिर भी नियुक्तियों में उन कतिपय सम्प्रदायों को स्थान देने के लिए हमें एक न एक व्यवस्था करनी ही चाहिए जिन्हें अब तक शासन-कार्य से सदा अलग ही रखा गया है। जैसा कि मैं बता चुका हूं, मसौदा-समिति को एक ऐसा नुस्खा तैयार करना था जो इन तीनों दृष्टिकोणों को संतुष्ट कर सकता हो। अगर माननीय सदस्यगण इस तथ्य पर ध्यान दें कि हमें इन तीनों विभिन्न दृष्टिकोणों को संतुष्ट

करना था तो यह देखेंगे कि अनुच्छेद 10(3) में जो नुस्खा रखा गया है उससे और अच्छा कोई रास्ता निकाला ही नहीं जा सकता था। वह देखेंगे कि अनुच्छेद 10 के खंड (1) में उन लोगों के विचार को स्थान दिया गया है जिसका अवसर-समता के सिद्धान्त में प्रबल विश्वास है। इस सिद्धान्त को व्यापक मान्यता दी गई हैं किन्तु इसके साथ ही, जैसा कि मैं बता चुका हूं, इस नुस्खे को कतिपय सम्प्रदायों की इस मांग के साथ भी हमें बैठाना था कि शासन का नियंत्रण अब तक ऐतिहासिक कारणों से एक सम्प्रदाय या चन्द सम्प्रदाय ही के लोग करते आ रहे थे और अब इस स्थिति का अन्त होना चाहिए और दूसरों को भी सरकारी नौकरियों में स्थान-प्रवेश पाने का अवसर मिलना चाहिए। अब जरा उदाहरण के लिए यह मान लीजिए, हम उन लोगों की मांग को पूर्णतः मान लेते हैं जिन्हें अब तक सरकारी नौकरियों में पूरी-पूरी जगह नहीं दी जाती थी। इसका परिणाम यह होगा कि हम उस पृथक् सिद्धांत का अर्थात् अवसर-समता के सिद्धांत का, पूर्णतः हनन कर देंगे जिस पर हम सभी एकमत हैं। मैं आपको उदाहरण देकर समझाऊंगा। मान लीजिए कि एक सम्प्रदाय या कई सम्प्रदायों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई जिसके अनुसार 70 प्रतिशत जगह उनके लिए सुरक्षित रख दी गई। अब बच जाती है 30 प्रतिशत जगहें, जो शेष लोगों के लिए होंगी। क्या कोई भी व्यक्ति यह मंजूर करेगा कि 30 प्रतिशत जगहें खुली प्रतियोगिता के लिए रखना अवसर-समता के सिद्धांत को अमली रूप देने के ख्याल से ठीक है? मेरी राय में तो यह ठीक नहीं होगा। इसलिए अगर आपको जगहें आरक्षित रखनी हैं और इस व्यवस्था को अनुच्छेद 10(1) के अनुरूप रखना है तो इसे कम जगहों तक ही सीमित रखिए। ऐसा होने पर ही अवसर-समता के सिद्धांत को विधान में वास्तविक स्थान मिल सकेगा और वह व्यवहार में आ सकेगा। हमें दो बातों का ख्याल है, एक तो अवसर-समता के सिद्धांत को भी जगह देना है और साथ ही उन अन्य सम्प्रदायों की मांगों को भी संतुष्ट करना है जिन्हें राज्य की नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधान अब तक नहीं मिलता रहा है। यदि माननीय सदस्यवृन्द इस स्थिति को समझते हैं तो मुझे पूरा विश्वास कि है वह इससे सहमत होंगे कि 'backward'' जैसा कोई प्रतिबंध मूलक शब्द अगर न रखा गया तो हमने आरक्षण के पक्ष में जो अपवाद रखा है वह इस नियम को व्यर्थ कर देगा। यही कारण है कि मसौदा-समिति ने अपनी जिम्मेदारी पर यह ''backward'' शब्द रखा है जो, मैं मानता हूं, इस सभा द्वारा स्वीकृत मूलाधिकारों में पहले नहीं रखा गया था।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

मसौदा-समिति का अनेक कारणों के आधार पर कभी यह कहकर उपहास किया गया है कि इसने जो मसौदा बनाया है उसकी बन्दिश इतनी ढीली-ढाली है कि अर्थ में काफी खींचातानी की जा सकती है। कभी यह कह कर उपहास किया गया है कि यह मसौदा उपयुक्त नहीं, ऐसा नहीं है, वैसा नहीं है। और मेरा ख्याल है कि माननीय सदस्यगण जरूर यह जानते होंगे कि अगर मसौदा-समिति यह शब्द न रखती तो इस बिना पर उसकी और भी आलोचना की जाती कि इसने जो मसौदा बनाया है उसमें अपवाद इतने है कि मूल नियम को प्रभावी बनने के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रह गई है। ''Backward'' क्यों रखा गया है, इसके औचित्य प्रदर्शन के लिए, मेरी समझ से, यह काफी है।

अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 296 में विशेष उल्लेख किया गया है, जहां यह कहा गया है कि उनके लिए कोई न कोई व्यवस्था जरूर की जायेगी। अवश्य ही इसके लिए हमने कोई अनुपात नहीं निश्चित किया। यह तो उस धारा से साफ जाहिर है पर ऐसी बात नहीं है कि अल्पसंख्यकों का हमने बिल्कुल ख्याल ही न किया हो। किसी सज्जन ने मुझसे यह पूछा कि आखिर ''backward'' सम्प्रदाय कौन है? मेरा ख्याल है कि जो कोई भी मसौदे की भाषा को पढ़ेगा उसे यह मालूम हो जायेगा कि हमने इसके निर्णय का भार प्रत्येक स्थानीय शासन पर छोड़ दिया है। जो सम्प्रदाय हुकूमत की दृष्टि में पिछड़ा हुआ है वह ''backward'' सम्प्रदाय माना जायेगा। मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने यह पूछा है कि क्या इस नियम को अमल में लाने के लिए न्यायालय में अपील की जा सकती है, इस सम्बन्ध में अधिकृत रूप से कोई उत्तर देना जरा कठिन है। मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि इसको अमल में लाने के लिए न्यायालय में अपील की जा सकती है। अगर किसी स्थानीय सरकार ने इस आरक्षण की श्रेणी में बहुसंख्यक जगहों को शामिल कर लिया है तो मैं समझता हूं कि कोई भी व्यक्ति संघ-न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय में जाकर यह कह सकता है कि इतनी अधिक आरक्षित जगहें रख दी गई हैं कि उससे अवसर-समता के नियम का ही हनन कर दिया गया है और तब न्यायालय यह निर्णय करेगा कि स्थानीय शासन या राज्य-शासन ने समुचित रूप से विवेक से कार्य किया है या नहीं। श्री कृष्णमाचारी ने यह कहा है कि कौन समुचित पुरुष हैं और कौन विवेकी पुरुष हैं? यह तो मुकद्दमेबाजी की बातें हुईं। अवश्य ही इन बातों को लेकर मुकद्दमे

चलते हैं, किन्तु मेरे माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी को मालूम होगा कि ''समुचित और विवेकी पुरुष'' का प्रयोग अनेक कानूनों में हुआ है और अगर वह सम्पत्ति हस्तान्तरण सम्बन्धी अधिनियम (Transfer of Property Act) रखें तो उन्हें पता चलेगा कि कई बातों के सम्बन्ध में ''समुचित और विवेकी पुरुष'' की इतनी विषद परिभाषा की गई है कि न्यायालय को इसकी परिभाषा देने में कोई कठिनाई न होगी। इसलिए आशा करता हूं कि जिन संशोधनों को मैंने स्वीकार किया है उन्हें सभा स्वीकार करेगी।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं एक-एक करके संशोधनों पर मत लेता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** संशोधन नं. 342 को मैं मंजूर करता हूं। मुझे खेद है कि यह बताना मैं भूल गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'on grounds only' शब्दों की जगह 'on grounds' शब्द रखे जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत रहा।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (1), (2) और (3) हटा दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत रहा।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) की जगह निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'(2) Every citizen shall be eligible for office under any State irrespective of his religion, caste, sex, descent or place of birth.' ''

(धर्म, जाति, लिंग, वंश अथवा जन्मस्थान सम्बन्धी किसी भेदभाव के बिना राज्याधीन पद के लिए प्रत्येक नागरिक पात्र होगा।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** अब मैं सूची 1 के 77 नं. संशोधन द्वारा संशोधित संशोधन नं. 338 पर मत लेता हूं। इसे संशोधित रूप में मसौदा-समिति के अध्यक्ष ने स्वीकार कर लिया है।

प्रस्ताव यह है कि:

''(1) अनुच्छेद 10 के खंड (1) में 'नियुक्ति के विषय में' शब्दों की जगह 'सेवायुक्ति अथवा पद पर नियुक्ति के विषय में' शब्द रखे जायें।

(2) अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'किसी पद के लिए' शब्दों के बाद 'किसी पद या नियुक्ति के लिए' शब्द रखे जायें।

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'place of birth' शब्द के बाद 'in India' शब्द जोड़े जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** अब सूची 3 के संशोधन नं. 81 द्वारा संशोधित संशोधन नं. 340 पर मत लेता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं कहूंगा कि संशोधन नं. 81 और 82 पर पहले मत लेना चाहिए, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 81 के सम्बन्ध में तो कोई मत-भेद है नहीं। फिर भी अगर आप जोर देंगे तो इन दोनों पर मैं अलग-अलग मत ले लूंगा। मैं चाहूंगा कि सभा मेरा साथ दे, जब तक कि नियमानुकूल कार्य चल रहा है।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरा ख्याल है कि यही अच्छा होगा, पर मैं इसके लिए जोर नहीं दूंगा।

***उपाध्यक्षः** आप जोर नहीं देते हैं। अस्तु, जब मैं अपनी ही मर्जी के मुताबिक पढ़ता हूं।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'birth' शब्द के बाद 'residence' शब्द रखा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) के बाद निम्नलिखित नया खंड जोड़ा जाये:

'(2a) Nothing in this article shall prevent Parliament from making any laws prescribing in regard to a class or classes of employment or appointment to an office under any State for the time being specified in the First Schedule or any local or other authority within its territory, any requirement as to residence within that State prior to such employment or appointment.' ''

(इस अनुच्छेद की किसी बात से संसद को ऐसा कानून बनाने में कोई रुकावट न होगी जो सेवायुक्तियों के किसी वर्ग या वर्गों के सम्बन्ध में अथवा चालू समय के लिए प्रथम अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य के अधीन या उसके राज्य-क्षेत्रान्तर्गत किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन किसी पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में, ऐसी सेवायुक्ति या नियुक्ति के पूर्व उस राज्य में अभ्यर्थी के निवास को लेकर किसी प्रतिबंध का विनिधान करता हो।')

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब सभा के समक्ष प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (2) में 'ineligible' शब्द के बाद 'or discriminatory against' शब्द रखे जायें।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

'अनुच्छेद 10 का खंड (3) निकाल दिया जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (3) में 'shall, prevent the State from making any provision for the reservation' शब्दों की जगह ये शब्द रखे जाये: 'shall, during a period of ten years after the commencement of this Constitution, prevent the State from making any reservation.' ''

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब सामने प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (3) से 'backward' शब्द हटा दिया जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 10 के खंड (4) में 'in connection with' शब्दों के बाद 'managing' शब्द जोड़ा जाये, और 'or denomination' शब्द हटा दिये जायें।

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं इस समूचे अनुच्छेद पर, जैसा कि इसमें संशोधन नं. 338 (संशोधन नं. 77 द्वारा संशोधित) द्वारा तथा संशोधन नं. 340 (तीसरी सूची के संशोधन नं. 81 और 82 द्वारा संशोधित) द्वारा और पुन: संशोधन नं. 342 द्वारा संशोधन किये गये हैं, मत लेता हूं।

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 10 अपने संशोधित रूप में विधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 12

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 12 को लेते हैं।

***एक माननीय सदस्य:** अनुच्छेद 10 (क) का क्या हुआ, श्रीमान्?

***उपाध्यक्षः** कार्यवाही का जो विवरण अपने पास उपलब्ध है उसके अनुसार तो यह निपटा दिया जा चुका है। वह उपस्थित ही नहीं किया गया। सभा के सामने प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 12 को विधान का अंग समझा जाये।''

इसके सम्बन्ध में पहला संशोधन है नं. 383 का, जो पं. लक्ष्मीकांत मैत्र और अन्य सदस्यों के नाम से है।

(*संशोधन नं. 383 नहीं पेश किया गया।*)

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 384 नियमानुकूल नहीं है।

(*संशोधन नं. 385 पेश नहीं किया गया।*)

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 386 और 392 पर एक साथ विचार किया जा सकता है। नं. 386 को पेश करने की अनुमति मैं दे सकता हूं। यह है श्री कमलेश्वरी प्रसाद यादव के नाम में।

(*संशोधन नं. 386 और 392 नहीं पेश किये गये।*)

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 387 और 394 एक ही आशय के हैं। नं. 387 को उपस्थित करने की मैं अनुमति दूंगा। एक बात और कहनी है। आपके भाषण प्रारम्भ करने के पहले मैं यह जानना चाहता हूं कि श्री ए.के. मेनन, जिनके नाम में संशोधन नं. 394 है, क्या अपने संशोधन पर जोर दे रहे हैं?

***श्री ए.के. मेनन** (मद्रास : जनरल): नहीं, श्रीमान्।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 12 के खंड (1) में 'title' शब्द के बाद 'not being a military or academic distinction' शब्द रखे जायें।''

अनुच्छेद 12 के (1) का संशोधित रूप यह होगा, श्रीमान्:

''No title not being a military or academic distinction shall be conferred by the State.''

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

(राज्य कोई उपाधि, जो सैनिक या विद्या-सम्बन्धी सम्मान के लिए न हो, न प्रदान करेगा।)

इस विशेष अनुच्छेद का इतिहास सभा के सभी सदस्यों को अच्छी तरह मालूम है। साधारणत: जनमत किसी भी उपाधि को देने के विरुद्ध रहा है। सभा को यह भी मालूम है कि स्वाधीनता प्राप्ति के फलस्वरूप हमारे कई नागरिकों ने, जिन्होंने पहले ब्रिटिश शासकों से उपाधियां स्वीकार की थीं, अपनी उपाधियों का परित्याग कर दिया है। कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने अभी इन उपाधियों को रख छोड़ा है। एक समय इस आशय का प्रस्ताव आया था कि मसौदा-समिति के सदस्यों की राय है कि ऐसी उपाधियां जो केवल पैतृक परम्परा के आधार पर या आभिजात्य गौरव के लिए दी जाती हैं वह बन्द कर दी जाये पर डा. अम्बेडकर ने उसे यहां रखना पसन्द नहीं किया। अगर यह प्रस्ताव यहां पेश हुआ होता तो इससे उन लोगों की स्थिति बड़ी जटिल हो जाती जिनके पास कोई पैतृक उपाधि तो थी नहीं और जिन्होंने स्वाधीनता प्राप्त होते ही अपनी दूसरी उपाधियों का परित्याग कर दिया। तब तो यह होता कि सरकार 'दीवान बहादुर' या 'सर' के आशय की अन्य कोई उपाधि प्रदान करती। इससे वे लोग, जिन्होंने स्वाधीनता पाते ही अपनी उपाधियां छोड़ दी थी, बड़ी ईर्ष्याजनक स्थिति में पड़ जाते।

अभी भी मेरी राय में यह अनुच्छेद पूर्ण नहीं है क्योंकि जो उपाधियां अंग्रेज शासकों द्वारा दी जा चुकी हैं, उनको जब तक अमान्यता नहीं दी जाती, तो उन लोगों को कोई लाभ नहीं होगा जिन लोगों ने सौजन्यपूर्वक अपनी उपाधियों का परित्याग कर दिया है। कुछ लोगों ने इसलिए उपाधियां छोड़ दी कि कोई काम मिल जायेगा और उन्होंने काम पा भी लिया। अन्य कई लोगों ने उपाधियां छोड़ी पर उन्हें इससे कुछ फायदा नहीं हुआ। कुछ लोगों ने अभी तक अपनी उपाधियां रख छोड़ी हैं और वर्तमान शासन उनको स्वीकार करता है। इससे उन लोगों की स्थिति बड़ी दयनीय हो जाती है जिन्होंने उपाधियों का परित्याग कर दिया है। हो सकता है कि आगे चल कर सरकार इन उपाधियों को मान्यता देने से इंकार कर दे। एक समाचार-पत्र को मैं जानता हूं जो सरकार के बड़े नजदीक है, वह इन उपाधियों को मान्यता देने से इंकार करता है। व्यक्तिगत रूप से अगर सभा मुझे

अपनी यह व्यक्तिगत बात कहने की अनुमति दे, मेरा अपना तो यह ख्याल है कि इन उपाधियों को रखना फायदेमंद है। यहां सभा में एक माननीय सदस्य वर्तमान है जिसका भी वही नाम है जो मेरा है। मेरे साथ वह विलायत भी गये थे। इनको उपाधि मिली है और मुझे नहीं। पर इससे लाभ यह है कि हम दोनों के नामों को लेकर कोई भ्रम नहीं उत्पन्न हो सकता। मुझे खुशी है कि इन्होंने अभी अपनी उपाधि रख छोड़ी है। अस्तु, इतना तो प्रसंगात् मैंने कह दिया। इस संशोधन से मेरा वास्तविक अभिप्राय यह है कि कुछ ऐसी किस्म की उपाधियां है जिनकी अनुमति हमें देनी चाहिए। उदाहरणार्थ, सदस्यों को मालूम है कि सरकार ने भविष्य में तीन प्रकार की सैनिक सम्मान की उपाधियां देने का निश्चय किया है। एक का नाम है महावीर-चक्र, दूसरी का परमवीर-चक्र, तीसरी का वीर-चक्र। कहीं आपको यह धोखा न हो कि इस सभा के ख्यातनामा सदस्य मित्र श्री महावीर त्यागी को यही उपाधि मिली है। नहीं, त्यागीजी को तो महावीर की उपाधि उनके माता-पिता ने ही नामकरण के सिलसिले में दी है। कालक्रम से यही वीर-चक्र आगे चलकर वीर-चक्र बन जायेगा। इस प्रकार की सैनिक उपाधियों का प्रावधान करने के उद्देश्य से ही यह संशोधन मैंने पेश किया है।

विद्या-सम्बन्धी उपाधियों के सम्बन्ध में आप यह कह सकते हैं कि राज्य उनको नहीं प्रदान करता। कुछ दिनों बाद ऐसा हो सकता है कि राज्य महामहोपाध्याय जैसी उपाधि की परम्परा फिर चला दे और इस उपाधि का सम्बन्ध विद्या से ही है।

और फिर अनुच्छेद 7 में 'स्टेट' शब्द की जो परिभाषा दी गई है उसके अनुसार विश्वविद्यालय भी स्टेट है और कोई भी सदस्य यहां यह नहीं कह सकता कि विश्वविद्यालय का स्टेट से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। इसलिए विश्वविद्यालय या शिक्षा-संस्थाएं जो उपाधियां देती हैं उनका प्रावधान करना ही होगा क्योंकि वर्तमान अनुच्छेद 12(1) के दायरे से इन उपाधियों को अलग नहीं किया जा सकता। यहां यह सवाल किया जा सकता है कि विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में बैठ कर हम लोगों ने जो उपाधियां प्राप्त की हैं, वह चाहे मेरी उपाधि जैसी कोई लघु उपाधि हो या अम्बेडकर की उपाधि की तरह कोई महती उपाधि हो, वह अनुच्छेद 12 के अंतर्गत आती हैं या नहीं, क्योंकि इनको पाने के लिए आखिर हम लोगों को परीक्षा में बैठना तो पड़ा ही है। यह उपाधियां अनुच्छेद 12 में

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

तो नहीं आयेंगी पर अन्य कई उपाधियां हैं जो केवल सम्मानार्थ दी जाती हैं और वह इस अनुच्छेद के अन्दर आयेंगी। उदाहरण के लिए, सभा जानती है कि हमारे प्रधानमंत्री, उपप्रधान मंत्री एवं गवर्नर-जनरल जहां कहीं भी जाते हैं और जहां कहीं भी बरसाती मेंढक की तरह कोई विश्वविद्यालय निकट पड़ा है, उन पर 'डाक्टर' की उपाधियां बरसाई जाती हैं। इस तरह की विशेष आवश्यकता की पूर्ति के लिए तथा इसलिए भी, अगर कभी दूसरे सदस्य मंत्री बन जाये तो उन्हें भी यह उपाधियां प्राप्त हो सकें, इस संशोधन द्वारा हम यह प्रावधान करना चाहते हैं कि इस उपखंड के अन्दर ज्ञान सम्बन्धी ऐसी उपाधियां न शामिल की जायें। आशा है सभा इस संशोधन के अभिप्राय को पूर्णतः समझ गई होगी। मेरी समझ से इस संशोधन द्वारा आगे आने वाली अवस्थाओं का ध्यान रखा गया है और उनके लिए व्यवस्था की गई है।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 388, 389, 390 का प्रथम अंश 391, 395, 396 और 397 एक ही आशय के हैं। उनमें से 389 पेश किया जा सकता है।

***श्री लोकनाथ मिश्रः** मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 12 के खंड (1) में be conferred' शब्दों के बाद 'or recognised' शब्द रखे जायें।''

यह एक छोटा सा संशोधन है, श्रीमान्। मैं यह कहना चाहता हूं कि अगर हम सभी उपाधियों को उठा देना चाहते हैं तो इसके लिए यह भी उचित है कि उन सभी उपाधियों को, जिन्हें हम सभी ने गलत या सही पा लिया है, मान्यता न दी जाये। हम लोग जानते हैं कि लोग कोशिश करके अपने नाम के साथ उपाधियां जुड़वाते हैं। नाम के आगे उपाधि जुड़ने पर व्यक्ति कुछ और ही दिखाई देने लगता है, उसका महत्त्व बढ़ जाता है। हमारे सामने ऐसे भी उदाहरण हैं कि ऐसे लोगों को उपाधियां मिल गई हैं जो उनके योग्य नहीं हैं और ऐसे सज्जन इन उपाधियों के महत्त्व को नष्ट कर देते हैं। इसलिए मैं कहूंगा कि हमें न केवल उपाधियों को उठा देना चाहिए बल्कि ऐसी किसी उपाधि को मान्यता भी न देनी चाहिये जो किसी को दी गई हो पर जिसे हम में से कोई भी मानता न हो।

***उपाध्यक्षः** मैं यह जानना चाहूंगा कि संशोधन नं. 388 के प्रस्तावकर्त्ता सदस्य क्या यह चाहते हैं कि इस पर मत लिया जाये?

***श्री एच.वी. कामतः** हां, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** मैं यह जानना चाहूंगा कि संशोधन नं. 390 के प्रथम अंश पर क्या मत लेना आवश्यक है?

***प्रो. के.टी. शाहः** हां।

***उपाध्यक्षः** नं. 391 भी वैसा ही है। नं. 393, 396 और 397 नहीं पेश किये गये। नं. 390 (दूसरा हिस्सा) केवल शाब्दिक है और इसलिए इसको रखने की अनुमति मैं नहीं देता। 398, 399 तथा 400 को मैं पेश करने की अनुमति दे सकता हूं।

(नं. 398 और 399 नहीं पेश किये गये।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 12 के खंड (2) की जगह निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'(2) No title conferred by any foreign State on any citizen of India shall be recognised by the State.' ''

(किसी विदेशी राज्य द्वारा, भारत के किसी नागरिक को प्रदत्त किसी उपाधि को राज्य स्वीकार न करेगा।)

यहां 'State' शब्द के पहले 'the' शब्द रखना आवश्यक था। जिस खंड के स्थान पर यह उपरोक्त खंड रखने की बात कही गई है वह यों है:

''No citizen of India shall accept any title from any foreign State.''

(भारत का कोई नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि न स्वीकार करेगा।)

मूल-खंड में जिस बात पर रोक लगाई गई है वह यह है, कोई नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि न स्वीकार करेगा। मैं पूछता हूं कि अगर कोई नागरिक विदेशी राज्य द्वारा प्रदत्त किसी उपाधि को स्वीकार कर लेता है तो उसके लिए दंड

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

की क्या व्यवस्था रखी गई है? इसके लिए तो कोई दंड नहीं प्रावहित है। इस खंड को अमल में लाने का राज्य के पास कोई साधन नहीं है। अगर कोई नागरिक विदेशी राज्य द्वारा प्रदत्त किसी उपाधि को स्वीकार कर लेता है तो आप क्या करेंगे? क्या उसे 6 माह का सश्रम कारावास देंगे?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** राज्य उस उपाधि को स्वीकार नहीं करेगा।

श्री नज़ीरुद्दीन अहमद: आपके इस हस्ताक्षेप के लिये मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूं। मेरा संशोधन ठीक यही कहता है कि किसी विदेशी राज्य द्वारा किसी भारतीय नागरिक को प्रदत्त कोई उपाधि राज्य द्वारा न स्वीकार की जायेगी। माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर ने भी कृपया यह व्यक्त कर दिया है कि राज्य ऐसी उपाधि को स्वीकार न करेगा। इसी स्पष्टता के साथ तो ऐसी बातों को व्यक्त करना चाहिए। अब मान लीजिए कि किसी माननीय सदस्य को एक विदेशी राज्य कोई उपाधि देता है और वह उसे स्वीकार कर लेते हैं। ऐसी सूरत में इस खंड (2) को अमल में लाने का कोई साधन नहीं है। आप ज्यादा से ज्यादा यही कर सकते हैं, जैसा कि डा. अम्बेडकर ने बताया है, कि राज्य उसे स्वीकार न करेगा। यही आशय मेरे संशोधन का भी है। मैं नहीं समझता कि इसके लिए और कुछ कहना भी आवश्यक है जबकि माननीय डा. अम्बेडकर जैसे अधिकारी व्यक्ति ने इसका समर्थन करते हुए मेरे भाषण में हस्ताक्षेप किया है।

(*संशोधन नं. 401, 402 और 403 नहीं पेश किये गये।*)

श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं इस संशोधन को पेश नहीं कर रहा हूं क्योंकि इसी तरह का संशोधन अभी श्री कृष्णमाचारी जी ने पेश किया था और मैं उनके साथ सहमत हूं। मैं अपना संशोधन पेश नहीं करता।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 404 नहीं पेश किया गया है। नं. 405, 406, 407, 410 और 411 एक ही तरह के हैं। संशोधन नं. 405 पेश किया जा सकता है।

(*संशोधन नं. 405, 406, 407, 410 और 411 नहीं पेश किये गये।*)

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 408 और 409 केवल शाब्दिक हैं इसलिए उनको पेश करने की मैं इजाजत नहीं देता हूं। अब इस पर आम बहस शुरू होगी। श्री कामत, आप आइये।

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से इस संशोधन के समर्थन में मैं चन्द शब्द कहना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** इस समूचे खंड पर तो बहस करने की अनुमति मैं आपको दे सकता हूं पर आपको यह इजाजत नहीं दे सकता कि आप अपने संशोधन पर बोलें।

***श्री एच.वी. कामतः** आपकी अनुमति से मैं किसी अन्य सदस्य के संशोधन के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूं। माननीय मित्र श्री लोकनाथ मिश्र के संशोधन के समर्थन में मुझे कुछ कहना है। किन्तु उस संशोधन पर बोलने के पूर्व मैं दो-चार शब्द उस सन्देह एवं कठिनाई के सम्बन्ध में कहूंगा जिसकी चर्चा श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने संशोधन नं. 400 का प्रस्ताव रखते हुए यहां की है। आपने यह प्रश्न किया कि अगर सभा का कोई सदस्य अथवा भारत को कोई नागरिक किसी विदेशी राज्य द्वारा प्रदत्त किसी उपाधि को लेता है तो क्या किया जायेगा? क्या उसे हम सश्रम कारावास का दंड देंगे? मैं कहता हूं कि इसका इलाज तो बहुत आसान है। हम यह सूचित कर सकते हैं कि जो कोई व्यक्ति किसी विदेशी राज्य द्वारा प्रदत्त किसी उपाधि को स्वीकार करेगा वह भारतीय नागरिकता से वंचित कर दिया जायेगा। इस अनुच्छेद के प्रावधान के अनुसार हम ऐसा कर सकते हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** किन्तु इस आशय का तो कोई प्रावधान है नहीं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह मानता हूं कि स्वतः वर्तमान व्यवस्था से ही यह परिणाम निकलेगा। अब मैं श्री मिश्र के संशोधन की ओर आता हूं, जिसका मैं समर्थन करने जा रहा हूं। संशोधन में कहा गया है कि राज्य न तो कोई उपाधि देगा और न किसी उपाधि को मान्यता देगा। देश की नवीन व्यवस्था में, मेरा ख्याल

[श्री एच.वी. कामत]

है कि यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रावधान है। यह कहना कि राज्य कोई उपाधि न देगा, एक बात है और यह कहना कि राज्य किसी उपाधि को मान्यता न देगा बिल्कुल दूसरी बात है। अंग्रेज लोग भारत छोड़ कर चले गये हैं कि दुर्भाग्य से, श्रीमान, आज हमारे देश में वह खिलौने हमारे साथ हैं जिन्हें वह यहां छोड़ गये हैं। अवश्य ही हम अपने देश-भाइयों को अपने साथी नागरिकों को इस बात के लिए बाध्य नहीं कर सकते कि वह उन उपाधियों को छोड़ दें जिनको उन्होंने अपने परम कृपालु मालिकों से पाया हैं इसके लिए किसी को मजबूर नहीं किया जा सकता। किन्तु यह तो अवश्य ही हम कर सकते हैं कि हमारी सरकार उन उपाधियों को मान्यता न दे। मैं अपनी बात को उदाहरण देकर समझाऊंगा। अधिकांश सरकारी कागजों में और कुछ में तो अवश्य ही तथा सरकार द्वारा समय-समय पर निकाली जाने वाली विज्ञप्तियों और प्रेस नोटों में सरकारी प्राधिकारियों का, जिसमें विदेश स्थित राजदूत भी शामिल हैं, उल्लेख उनकी उपाधियों के साथ किया जाता है। अगर मुझे ठीक-ठीक याद है तो पैरिस में हमारा जो चार्ज-डी-अफ्फेयर्स है और अमेरिका में जो राजदूत है, उनके नामों का जब भी सरकारी विज्ञप्तियों या प्रेस नोटों में उल्लेख किया जाता है तो साथ में उनकी उपाधियों का भी उल्लेख रहता है। कम से कम मैं तो यह नहीं समझ पाता हूं कि क्यों सरकार अपनी विज्ञप्तियों और प्रेस नोटों में इन उपाधियों को मान्यता देती है। मुझे अच्छी तरह याद है कि रूसी क्रांति के बाद और टर्की की क्रांति के पश्चात्, जो आज करीब 25 वर्ष की बात है, वह सारी उपाधियां उठा दी गई जिनको पूर्ववर्त्ती शासन-व्यवस्थाओं ने प्रदान कर रखा था और जिन लोगों ने इन उपाधियों का परित्याग नहीं किया उनको वहां कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। वहां राज्य नामों के साथ उन उपाधियों का कभी उल्लेख नहीं करते थे।

हां, श्री मिश्र के संशोधन के विरुद्ध यह तर्क जरूर उपस्थित किया जा सकता है कि इस अधिकार को न्याय अधिकार बनाना सम्भव नहीं है। किन्तु मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि अगर अनुच्छेद 12 का खंड (1) को न्याय अधिकार माना जा सकता है तो यह क्यों नहीं न्याय अधिकार हो सकता? मुझे इस सम्बन्ध में गम्भीर संदेह है कि अनुच्छेद 12(1) को न्याय अधिकार का रूप दिया जा

सकता है। राज्य कोई उपाधि न प्रदान करेगा। किन्तु यदि राज्य किसी को असावधानी से अथवा अन्यमनस्क होकर या अन्य किसी कारण से कहीं कोई उपाधि प्रदान ही कर दे तो राज्य के विरुद्ध क्या कार्रवाई की जा सकती है? जो कुछ भी हो आखिर स्वयं राज्य ने ही तो उपाधि प्रदान की है। उस हालत में क्या आप राज्य के विरुद्ध कोई कार्रवाई करेंगे? अगर उस सूरत में आप राज्य के विरुद्ध अदालती कार्रवाई कर सकते हैं तो कोई कारण नहीं है कि आप राज्य के विरुद्ध उस सूरत में अदालती कार्रवाई न करें जब कि राज्य किसी भी रूप में ऐसी उपाधि को स्वीकार करता है जिसे अंग्रेज मालिक प्रदान कर गये हैं। इसलिए मैं श्री मिश्र के संशोधन का समर्थन करता हूं। जहां तक इन उपाधियों का सम्बन्ध है जो दुर्भाग्य से आज भी हमारे पास हैं अथवा जहां तक कि इन उपाधियों के धारण करने वालों का सम्बन्ध है, भारत सरकार को इन्हें किसी भी रूप में—अपने कागजों में या प्राधिकारी व्यक्तियों के नामों के साथ उल्लेख करके—न स्वीकार करना चाहिए। यदि इसे न्याय अधिकार के रूप में रखने में कोई कानूनी कठिनाई है तो मुझे खुशी होगी, अगर मेरे विद्वान् मित्र डा. अम्बेडकर यही व्यक्त करें कि यह सिद्धांत उन्हें मान्य है। वह यह बतायें कि विधान में यह कहीं रखा जा सकता है या नहीं और एक विशेष विधेयक के रूप में संसद में यह बात रखी जा सकती है या नहीं कि उपाधियों को राज्य स्वीकार न करेगा। माननीय मित्र डा. अम्बेडकर से यह बातें जान कर मुझे प्रसन्नता होगी और उस हालत में, आशा है, मिश्र जी भी अपने संशोधन के लिए जोर न देंगे।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अंग्रेजी राज में उपाधियों को प्रदान कुछ ऐसा कलंकपूर्ण कार्य था कि देशवासी उपाधियों से बड़ी ही घृणा करते थे। मुझे खुशी है कि इस सभा में और इस से बाहर आज भी लोग उपाधियों को पूर्ववत् घृणा से ही देखते हैं और विधान में यह ठीक ही प्रावधान किया गया है कि राज्य किसी नागरिक को भी कोई उपाधि न प्रदान करेगा।

अगर आप इसी अनुच्छेद के खंड (3) को देखें तो आपको पता चलेगा कि विदेशी राज्य द्वारा प्रदत्त उपाधि को स्वीकार करने के सम्बन्ध में इस खंड से

[श्री आर.के. सिधवा]

यह छूट मिलती है। अगर अपना ही राज्य किसी नागरिक को उपाधि देना नहीं स्वीकार करता है, तो मैं नहीं समझता कि हम किसी विदेशी राज्य को ही क्यों यह अनुमति दें कि वह हमारे नागरिक को कोई उपाधि प्रदान करे। मेरी राय है कि इस खंड से 'title' शब्द निकाल देना चाहिए। इस खंड [12(3)] में कहा गया है कि:

> ''No person holding any office of profit or trust under the State shall, without the consent of the President, accept any present, emolument, title or office of any kind from or under any foreign State.''
>
> (राज्य के अधीन लाभ-पद अथवा विश्वास-पद पर आरूढ़ कोई व्यक्ति किसी विदेशी राज्य से अथवा उसके अधीन, कोई भेंट, परिलाभ (emolument), उपाधि अथवा पद, प्रधान की सहमति के बिना स्वीकार न करेगा।)

यहां भेंट और परिलाभ का उल्लेख किया गया है, वह तो समझ में आता है किन्तु उपाधि को क्यों रखा गया है? इस समस्त अनुच्छेद का अभिप्राय ही यह है कि उपाधियां न दी जायें। उस हालत में इस खंड (3) में 'title' शब्द ही क्यों रखा जाये? इस शब्द को यहां रख देने से इस अनुच्छेद का सौन्दर्य ही समाप्त हो जाता है। मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं, पर मेरी समझ से अच्छा होता, अगर विदेशी राज्यों को यह अनुमति न दी जाती कि वह हमारे नागरिकों को कोई उपाधि प्रदान करे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं जिसे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने यहां उपस्थित किया है।

श्री नजीरुद्दीन अहमद का संशोधन यह है कि ''accepted'' शब्द की जगह ''recognised'' शब्द रखा जाये। इसके पक्ष में आपने यह तर्क उपस्थित किया है कि मान लीजिए कोई नागरिक किसी उपाधि को स्वीकार ही कर लेता है, तो उसके इस कार्य को व्यर्थ और अनियमित ठहराने के लिए विधान में क्या दंडमूलक व्यवस्था रखी गई है? मेरी ओर से इसका सीधा-सादा जवाब यह है

कि प्रस्तुत विधान के अनुसार संसद अपने अवशिष्ट अधिकारों के अन्दर ऐसा कानून बना सकती है जिसमें यह विनिधान किया गया हो कि इस अनुच्छेद के प्रावधानों के विरुद्ध अगर कोई नागरिक कुछ करता है तो उसके खिलाफ क्या कार्रवाई की जाये। मेरा ख्याल है कि जिस स्थिति का उन्होंने उल्लेख किया है उसके निवारण के लिए यह व्यवस्था पर्याप्त है।

श्री कामत ने एक और सवाल भी उठाया है और अगर मैंने उनकी बात को ठीक-ठीक समझा है तो उनका प्रश्न यही है कि यह अधिकार न्याय है या नहीं। अपनी नागरिकता को बनाये रखने के लिए उपाधियों को न स्वीकार करना एक जरूरी शर्त है। यह अधिकार नहीं है बल्कि व्यक्ति पर यह कर्त्तव्य आरोपित किया जाता है कि अगर उसे राज्य का सतत रूप से नागरिक बना रहना है तो इसके लिए उसे कई शर्तों को पूरा करना होगा। उन शर्तों में एक यह भी है कि वह किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि न स्वीकार करे, क्योंकि संसद कानून बना कर यह व्यवस्था निश्चित कर सकती है कि अगर कोई नागरिक अनुच्छेद 12 के खंड (1) या (3) के विरुद्ध कोई उपाधि स्वीकार करेगा, तो उसके विरुद्ध क्या कार्रवाई की जायेगी और हो सकता है कि इस अनुच्छेद के प्रतिकूल जाने पर उसे दंड का भागी होना पड़े। हो सकता है कि दंड के फलस्वरूप उसे अपनी नागरिकता के अधिकारों से हाथ धोना पड़े। इसलिए इस प्रावधान को समझने में वस्तुतः कोई कठिनाई ही नहीं है क्योंकि नागरिकता के लिए यह एक प्रतिबंध सा है। स्वतः यह कोई न्याय अधिकार नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरा सवाल तो है कि वर्तमान उपाधियों को राज्य स्वीकार करेगा या नहीं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** जैसा कि मैंने माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद को अभी जवाब में बताया है, संसद को अधिकार है कि इस पर जो चाहे कार्रवाई करे। वह यह भी कह सकती है कि इन उपाधियों को राज्य न स्वीकार करेगा।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं डा. अम्बेडकर से यह चाहता हूं कि वह इस सिद्धांत को स्वीकार कर लें। आगे चल कर संसद जो भी करना चाहे कर सकती है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अवश्य ही यह तो सहज बुद्धि की बात है कि अगर विधान में यह कहा गया है कि कोई नागरिक उपाधि न स्वीकार करेगा तो संसद का यह देखना कर्त्तव्य होगा कि कोई नागरिक इस प्रावधान का उल्लंघन न करे।

इसके बाद सभा बुधवार ता. 1 दिसम्बर सन् 1948 ई. के प्रात: साढ़े 10 बजे तक के लिए स्थगित हुई।